का.सु.8, 2074
Kailashnagar, Surat

श्री आवश्यक सूत्र

मलय. टीका | सव. सूत्र में ही तीनों ~~का~~ काल का ग्रहण किया है - वह कहते हैं -

गा 1058 | 'सामायिक करता हूँ' 'प्रत्याख्यान करता हूँ' 'प्रतिक्रमामि' इन 3 पदों से 3 काल का ग्रहण है।

★ 'सामाइयं करेमि' इस पद से वर्तमानकाल का ग्रहण।
'पच्चक्खामि' पद से भविष्य का ग्रहण।
'पडिक्कमामि' पद से भूत का ग्रहण।

★ 'तस्य भदन्त! प्रतिक्रमामि' - तस्य पद से योग का संबंध है, वह प्रतिक्रमामि क्रिया का कर्म है।

प्र. क्रिया के कर्म को द्वितीया न कर षष्ठी क्यों की?
उ. विशेष अर्थ बताने के लिए। अवयव-अवयवी के संबंध में षष्ठी वि. है। अवयव-भूतकाल संबंधी सावद्य योग, अवयवी-त्रिकाल विषयक योग। अर्थात्
तीनों काल में से भूतकाल के सावद्य योगों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ, वर्तमान या भविष्य के नहीं।

कोई विभाग को नहीं जानने वाले सामान्य से योग का संबंध करते हैं किंतु त्रिकाल विषयक प्रतिक्रमण संभव नहीं है। सूत्र में भी भूतकाल विषयक प्रतिक्रमण ही कहा है।

★ प्र. पहले सामान्य योग का संबंध कर तत् शब्द से विशेष अर्थ मान लो।
उ. इसमें गौरव होगा।

HAPPY THOUGHTS

पृ. 'अतीतं भंते! पडिक्कमामि' क्यों नहीं कहा?
उ. इसमें पुनरुक्त दोष होता।

पृ. पुनरुक्त कैसे?
उ. प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त में कहा गया है। प्रायश्चित सेवित दोष का ही होता है। अतः अर्थ से अतीतविषयक ही होने से 'अतीत' शब्द पुनरुक्त होता।

अव. यदि ऐसे पुनरुक्त कहते हो तो अन्य पद भी अनर्थक हैं, ऐसी आपत्ति देते हैं-

गा.1059 (पृ.) तिविहेणं पद युक्त नहीं है क्योंकि आगे 'मणेणं वायाए...' पद की विधि से यह अर्थ पता चल जाता है।
(उ.) अर्थ की विकल्पना और गुणभावना से कहने में क्या दोष है?

★ उ. ① अर्थ विकल्पना = सभी अर्थ सामान्य-विशेष रूप हैं, यह बताने के लिए कहा। तिविहेणं सामान्य है, मणेणं वि. विशेष हैं।

② गुणभावना = सामायिक रूप जो गुण है, उसे पुनः पुनः कहने से भावना होती है, भावना कर्म निर्जरा का हेतु है। अतः भावना के लिए पुनः कहा।

③ मन-वचन-काया और न करेमि, न कारयामि, न अनुजानामि इन पदों को यथासंख्यं न्याय नहीं लगता, यह बताने के लिए त्रिविध-त्रिविध लिखा।
इसी प्रकार के प्रश्न 'तिविहं' के लिए भी जानना।

HAPPY THOUGHTS

★ प्र. भदन्त शब्द पहले कहा गया, पुनः यहाँ क्यों रखा?

उ. ① पुनः स्मरण के लिए प्रयोग किया है।

② पाणिनि वि. का न्याय है कि विधि यत्न करने से यानि पुनरुच्चार करने से अनुवर्तन होती है।

③ ऐसा बताने के लिए- कि सभी क्रिया के अंत में गुरु को प्रत्यर्पण करना चाहिए।

अब. प्रतिक्रमण यानि मिच्छामि दुक्कडं। वह २प्र. द्रव्य, भाव –

गा. 1060 द्रव्य में निह्नवादि, कुम्हार का उदाहरण है। भाव में तदुपयुक्त, मृगावती का उदाहरण है।

★ द्रव्य प्रतिक्रमण – कुम्हार → एक कुम्हार की कुटीर में साधु रहे × एक बालमुनि कुम्हार के वर्तन कंकरों से फोड़ता है × कुम्हार के डाँटने पर मिच्छामि दुक्कडं देकर पुनः फोड़ता है × कुम्हार ने कान मोड़ा × वह चिल्लाए × कुम्हार बार-बार कान मोड़कर मिच्छामि दुक्कडं देता है × बाल मुनि- तेरा मिच्छामि दुक्कडं सुंदर है × कुम्हार - आपका भी ऐसा ही था।

★ भाव प्रतिक्रमण- मृगावती → कौशांबी × चंद्र-सूर्य विमान सहित वंदन करने आए × उदायन राजा की माता सा. मृगावती दिन समझकर देर तक बैठी × शेष साध्वी गई × रात होने पर संभ्रान्त होकर चंदना साध्वी के पास आई × सब प्रतिक्रमण कर रहे थे × आर्या चंदना- आपके जैसे उत्तमकुल वाले की देर तक बाहर रहना उचित नहीं × वे मिच्छामि दुक्कडं कहती हुई पैर में पड़ी × आर्या चंदना को संथारे में बैठे नींद आ गई × तीव्र संवेग आने पर पैर में पड़ी मृगावती को केवलज्ञान हुआ × सर्प वहाँ से निकला

HAPPY THOUGHTS

x चंदना ने हाथ लंबा किया x मृगावती ने हाथ संथारे पर रखा x चंदना- अभी भी यहाँ बैठी है, मिच्छामि दुक्कडं मैं उठाना भूल गई x मृगावती- यह साँप काटे नहीं इसलिए हाथ पुनः ऊपर रखा x चं.- कहाँ है? x मृगावती के दिखाने पर भी नहीं देखती हुई चं.- क्या तुझे अतिशय हुआ है? x मृ.- हाँ x चं.- छद्मस्थ या कैवलिक? x मृ.- कैवलिक x आर्या चंदना पैर में पड़कर मिच्छामि दुक्कडं माँगने लगी x भाव प्रतिक्रमण हुआ x

अब 'प्रतिक्रमामि' पूर्ण हुआ। 'निंदामि' और 'गर्हे' पद में विशेष अंतर-

गा.1061 सचारित्र जीव का पश्चात्ताप निंदा। उसके 4 निक्षेप। द्रव्य में चित्रकार- पुत्री और भाव में बहुत उदाहरण हैं।

★ स्वप्रत्यक्ष = निंदा।

★ 4 निक्षेप - नामस्थापना सुगम। द्रव्य निंदा में चित्रकारपुत्री का उदाहरण आगे प्रतिक्रमण अध्ययन में गा.1241 में (हरिभद्रीय टीका) में देखब देखना।
भाव निंदा के दृष्टांत योग संग्रह में कहेंगे।

गा.1062 गर्हा भी वैसे ही होती है, विशेष वह परप्रकाश रूप होती है। द्रव्य में मरुक, भाव में बहुत उदाहरण हैं।

★ परप्रत्यक्ष = गर्हा (गुरु के प्रत्यक्ष)

★ 4 निक्षेप - नामस्थापना सुगम। द्रव्य
द्रव्य गर्हा - eg. आनंदपुर x एक ब्राह्मण पुत्रवधू के साथ रात रहकर उपाध्याय के पास जाकर बोला- मैंने स्वप्न में पुत्रवधू के साथ रात पसार की।

HAPPY THOUGHTS

भावगर्हा में साधु का उदाहरण - (ओघनिर्युक्ति गा. 158) -
गुरु के पास जाकर विनय कर जैसे पाप का ज्ञान स्वयं
को है, वैसा ही गुरु को कराए।

★ किसकी निंदा या गर्हा - 'अप्पाणं' (देखें सूत्र भा. 3 में Pg. 121)
अप्पाणं के 3 अर्थ -
(1) 'आत्मानं' - भूतकाल में सावद्ययोग करने वाले मेरी आत्मा
की निंदा या गर्हा।
(2) 'अत्राणं' - रक्षण करने में असमर्थ ऐसे सावद्य योगों की मैं
निंदा - गर्हा करता हूँ।
(3) 'अतनं' - 'अत् सातत्यगमने' अतनं = सतत होने वाला ऐसा
भूतकाल विषयक सावद्य योग।

★ वोसिरामि - व्युत्सृजामि
वि शब्द - विशेषण या विविध अर्थ में; उत् शब्द - भृश अर्थ में।
अतीत सावद्य योग का विशेष से बार-बार त्याग करता हूँ।

प्र. 'करोमि सामायिकं' ऐसा कहने पर ~~विष~~ 'वोसिरामि' शब्द प्रयोग
में विपरीतता लगती है।
उ. ऐसा नहीं है, जैसे मांसत्याग करने के बाद वोसिरामि
बोलने से उसके विपक्ष यानि मांसभक्षण का त्याग कहा
जाता है। वैसे ही यहाँ भी।

HAPPY
उव. व्युत्सर्ग ५४. नाम-स्थापना सुगम। द्रव्य- THOUGHTS
भाव -

गा. 1063 | द्रव्य व्युत्सर्ग में प्रसन्नचंद्र, भाव में प्रत्यागत संवेग वाले इनका ही उदाहरण है।

★ | द्रव्य व्युत्सर्ग = गण-उपधि-शरीर-अन्नपानादि का त्याग। अथवा आर्त-रौद्रध्यानी का काउसग्ग।

★ भाव व्युत्सर्ग = अज्ञानादि का त्याग या धर्म-शुक्लध्यानी का काउसग्ग।

★ प्रसन्नचंद्र राजर्षि — पोतनपुर x प्रसन्नचंद्र राजा x भ. पधारे x राजा धर्म सुनने गया x दीक्षा ली x गीतार्थ हुआ x जिनकल्प स्वीकारने के लिए 7 भावना से स्वयं को भावित करता है x राजगृह में श्मशान में प्रतिमा ली x भ. भी राजगृही पधारे x लोग निकले x दो वणिक् पोतनपुर से आए x एक प्रसन्नचंद्र को देखकर बोला - यह हमारा राजा राजश्री छोड़कर तपश्री को प्राप्त हुआ, धन्य है x दूसरा - कैसा धन्य है बाल पुत्र को राज्य देकर निकला, अब वह अन्य राजाओं और मंत्रियों से पराभव पा रहा है x सुनकर प्रसन्नचंद्र राजर्षि को कोप चढ़ा x मानस युद्ध से रौद्रध्यान में चढ़े x तभी श्रेणिक वहाँ से निकला x भ. के समवसरण में जाकर पूछा - जब मैंने वंदन किया तभी काल करे तो वो मुनि कहाँ जाएँ ? x भ. - 7वीं नारक x श्रेणिक ने चकित होकर सोचा - पुनः पूछता हूँ x इसी दरम्यान मानस युद्ध में प्रसन्नचंद्र के शस्त्र खत्म हो गए, मुकुट से मारने के लिए मस्तक पर हाथ लगाया x लोच जानकर पुनः संवेग को प्राप्त हुए x विशुद्ध परिणाम से शुक्लध्यान में चढ़े x श्रे. ने पुनः पूछा x भ. - प्रत्युत्तर में x श्रे. - पहले क्या आपने अन्यथा कहा था या मैंने अन्यथा सुना था x भ. - ऐसा नहीं है x भ. ने पूरा वृत्तांत कहा x तभी देवदुंदुभि बजी

HAPPY THOUGHTS

श्रे-भ. यह क्या है? x भ.- उन्हीं मुनि को केवलज्ञान हुआ है xx
यही दृष्टांत द्रव्य और भाव व्युत्सर्ग में है।

अव. समाप्ति में सामायिक का कर्ता कैसा होता है? वह कहते हैं-

गा.1064 ~~सामायिक में~~ सावद्य योग से विरत और त्रिविध-त्रिविध से व्युत्सृष्ट पाप होता है। यह अनुगम परिसमाप्त हुआ।

★ सावद्य योग से विरत - वर्तमान और भूत के पाप का त्याग।
व्युत्सृष्ट पाप - भविष्य के पाप का त्याग।

★ सामायिकादि सूत्र विषयक यह अनुगम समाप्त हुआ।
सामायिकादि - करेमि भंते सामाइयं.... वि.सूत्र का।
(टीप्पणक)

अव. अनुगम नामक उरा अनुयोग द्वार पूर्ण हुआ (देखें अनुयोग द्वार Chart भाग 1 Pg 11)।
अब नय द्वार। नय 7 हैं। इन नयों का स्वरूप पहले विस्तार से बता चुके हैं (भाग 2 Pg 57-63 गा. 754-61)
यहाँ स्थान शून्य न रहे इसलिए ज्ञान-क्रिया 2 नय में अन्तर्भाव कर संक्षेप में कहते हैं-

गा.1065 विद्या-चरण नयों में शेष नयों का समवतार करना। सुभाषित अर्थ वाली सामायिक निर्युक्ति समाप्त हुई।

अव. ज्ञान-क्रिया नय चर्चा। ज्ञाननय ज्ञान को प्रधान मानता है। उसकी युक्ति -

गा.1066 गृहीतव्य और अग्रहीतव्य अर्थ ज्ञात होने पर ही ~~[illegible]~~ यत्न करना ही चाहिए। ऐसा जो उपदेश करता है, वह ज्ञाननय है।

HAPPY
THOUGHTS

* गृहीतव्य यानि उपादेय – २प्र. ऐहिक – फूल, चंदनादि।
पारलौकिक – सम्यग्दर्शनादि।
* अगृहीतव्य यानि हेय – २प्र. ऐहिक – विष-शस्त्रादि।
पारलौकिक – मिथ्यात्वादि।
* (प्रशब्द से) उपेक्षणीय अर्थ – eg. देवगति वि. (अमुक अपेक्षा से)

* ज्ञान नय के तर्क –
1. अज्ञात अर्थ होने पर फल विसंवादी हो सकता है।
2. आगम – पढमं नाणं तओ दया... ।
3. केवल अगीतार्थ का ~~विह~~ विहार निषेध।
4. अन्ध अंधे से खींचाता हुआ सही रास्ते पर नहीं जाता।
ये सब क्षायोपशमिक ज्ञान के तर्क हुए। क्षायिक ज्ञान –
5. दीक्षा लिए हुए, उत्कृष्ट तप-चारित्र वाले तीर्थंकर को भी केवलज्ञान बिना मोक्ष नहीं होता।

* यह ज्ञान नय ५प्र. के सा. में से सम्यक्त्व और श्रुत सा. को मानता है। देश-सर्वविरति को ज्ञान का कार्य होने से नहीं मानता अथवा ~~मुख्य~~ गौण रूप इच्छता है।

क्रियानय – क्रिया नय के मत में भी गा. 1066 ही है, मात्र व्याख्या बदलना है।
* व्याख्या – गृहीतव्य और अगृहीतव्य अर्थ ज्ञात होने पर यत्न करना ही चाहिए क्योंकि प्रयत्न बिना ज्ञान वाले को भी इष्ट अर्थ प्राप्त नहीं होता।

HAPPY THOUGHTS

* क्रिया नय के तर्क-

(1) क्रिया रहित पुरुषों का ज्ञान विफल है।

(2) आगम- सुबहुंपि सुयमहीयं किं काहिइ चरणविप्पहीणस्स

(3) लाखों दीए जलाने पर भी अंधे को दिखता नहीं है क्योंकि इसमें देखने की क्रिया नहीं है।

(4) ये सब क्षायोपशमिक चारित्र के तर्क हुए। क्षायिक चारित्र-

(5) केवलज्ञान होने पर भी सर्वसंवर रूप चारित्र बिना तीर्थंकर को मोक्ष नहीं होता।

* यह क्रिया नय 4 प्र. के सा. में से देश-सर्वविरति सा. को मानता है। सम्यक्त्व-श्रुत सा. चारित्र के लिए ही की जाने से नहीं मानता या गौण रूप मानता है।

अव. ज्ञान-क्रिया नय के स्वरूप को सुनकर संशय वाला शिष्य पूछता है- यहाँ तत्त्व क्या है?। गुरु -

गा.1067 सभी नयों की बहु वक्तव्यता को सुनकर जो चरणगुण में स्थित है, वह सर्व नय से विशुद्ध साधु है।

सामायिकस्य विवृत्तिं कृत्वा यदवाप्तमिह मया कुशलम् ।
तेन खलु सर्वलोको लभतां सामायिकं परमम् ॥
यस्माज्जगाद भगवान् सामायिकमेव निरूपमोपायम् ।
शारीरमानसानेकदुःखनाशस्य मोक्षस्य ॥
(दोनों श्लोक हरिभद्रीय और मलयगिरीय टीका)
मलयगिरीय टीका ग्रंथाग्रं 22000

HAPPY THOUGHTS

श्रीसामायिकाध्ययनं समाप्तम् ।

श्रीचतुर्विंशतिस्तव द्वितीयाध्ययनम् ।

★ अध्ययन-उद्देश-सूत्र के आरंभ में कारण और अभिसंबंध कहना चाहिए, ऐसा वृद्धप्रवाद है।

पहले कारण कहते हैं- (सामायिक के बाद चतुर्विंशतिस्तव अध्ययन ही क्यों?)-

गुरु गुणवान् शिष्य को सूत्र-अर्थ से आवश्यकश्रुतस्कंध देते हैं, पहला सामायिक अध्ययन दिया। दूसरा यह अध्ययन है। पहले सावद्ययोग विरति, उत्कीर्तनादि अधिकार बताए थे। (भाग 1 में Pg 110) उस वचन के प्रामाण्य से अब यह अध्ययन आएगा।

संबंध- अनंतर अध्ययन में सावद्य योग विरति रूप सामायिक कही। यहाँ सामायिक का उपदेश देने वाले तीर्थंकरों का कीर्तन है।

अथवा

जैसे सामायिक से कर्म निर्जरा होती है, वैसे कीर्तन से भी कर्म निर्जरा होती है।

अव. इस संबंध से आए हुए चतुर्विंशतिस्तव अध्ययन के 4 अनुयोग द्वार विस्तार से कहना चाहिए।

नाम निष्पन्न निक्षेप द्वार (देखें अनुयोग द्वार chart भाग 1 में Pg 111) में 'चतुर्विंशति स्तव अध्ययन' शब्द के निक्षेप-

गा. 1068 चतुर्विंशति स्तव का नाम निष्पन्न निक्षेप होता है। चतुर्विंशति का 6, स्तव के 4 निक्षेप होते हैं।

★ चतुर्विंशति स्तव का नामनिक्षेप वही यानि 'चतुर्विंशति स्तव' ही होता है। क्योंकि अन्य कोई नाम उसका सुना नहीं जाता।

HAPPY THOUGHTS

★ चतुर्विंशति शब्द के 6, स्तव के 4, अध्ययन (तुशब्द से) के भी 4 निक्षेप होते हैं।

अव. चतुर्विंशति के निक्षेप –

भा. 192 नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव, चतुर्विंशति के ये 6 निक्षेप हैं।

★ नाम चतुर्विंशति – ① किसी जीव/अजीव का नाम रखना
② 'चतुर्विंशति' अक्षर

★ स्थापना चतुर्विंशति – किसी में 24 वस्तु की स्थापना करना।

★ द्रव्य चतुर्विंशति – उप. सचित्त, अचित्त, मिश्र कोई भी 24 द्रव्य।

★ क्षेत्र चतुर्विंशति – भरतादि 24 क्षेत्र / अथवा 24 आकाश प्रदेश अथवा 24 प्रदेश में अवगाढ द्रव्य।

★ काल " – 24 समयादि अथवा इतने काल की स्थिति वाला द्रव्य।

★ भाव " – 24 गुण कृष्णादि द्रव्य अथवा 24 भाव के संयोग।

★ यहाँ सचित्त द्विपद मनुष्य चतुर्विंशति से अधिकार है।

अव. स्तव के निक्षेप –

भा. 193 नाम स्थापना द्रव्य भाव स्तव का निक्षेप होता है।
द्रव्य स्तव पुष्पादि / भाव में संतगुण कीर्तनादि

HAPPY THOUGHTS

* नाम स्थापना प्रसिद्ध।
* द्रव्य स्तव - पुष्पादि, कारण में कार्य का उपचार।
पुष्पादि से पूजा।
* भाव स्तव - सद्गुणों का कीर्तन।
इससे असद्गुणों के कीर्तन का निषेध है क्योंकि उससे मृषावाद होता है।

* उत्कीर्तन ⇒ उत् = प्रबलता से कीर्तन। eg. -
प्रकाशितं यथैकेन त्वया सम्यक् जगत्त्रयम्।
समग्रैरपि नो नाथ! परतीर्थाधिपैस्तथा ॥
विद्योतयति वा लोकं यथैकोऽपि निशाकरः।
समुद्गतः समग्रोऽपि किं तथा तारकागणः ॥

अव. चालना से प्रतिष्ठित अर्थ ही सम्यग्ज्ञान के लिए समर्थ है। अतः चालना कभी शिष्य करता है, कभी गुरु स्वयं ही करते हैं। धन त्यागादि से द्रव्य स्तव ही प्रधान है, ऐसी बुद्धि किसी की हो तो उसका उत्तर -

भा. 194 द्रव्य स्तव और भाव स्तव में द्रव्यस्तव बहुगुणकारी है, ऐसी बुद्धि किसी को हो किंतु यह अनिपुणमति वाले का वचन जानना। जिनेश्वर 6 जीवकाय के हित को प्रधान कहते हैं।

भा. 195 द्रव्य स्तव में 6 जीवकाय का संपूर्ण संयम नहीं होता अतः संपूर्ण संयम जानने वाले पुष्पादि नहीं इच्छते।

* पूर्वपक्ष - (a) धन त्याग से शुभ ही अध्यवसाय है तथा (b) तीर्थ की उन्नति है तथा द्रव्य स्तव देखकर अन्य भी बोध पाते हैं अतः द्रव्यस्तव प्रधान है।

HAPPY THOUGHTS

उत्तरपक्ष - (a) किसी अल्प सत्त्व वाले को या अविवेकी को शुभ अध्यवसाय न भी हो. जैसे कोई यश-कीर्ति के लिए भी द्रव्यस्तव करे।

(b) भावस्तव वाला देवादि को भी पूज्य होने से उसमें ही तीर्थ की उन्नति है

अव. तो क्या द्रव्यस्तव सर्वथा हेय है? उ. साधुओं को हेय है, श्रावकों को उपादेय भी है।-

भा. 196 अकृत्स्नप्रवृत्त विरताविरत श्रावकों को यह युक्त है। संसार को पतला करने वाले द्रव्यस्तव में कूप दृष्टांत है।

* ~~कूप दृष्टांत =~~

* प्र. जो द्रव्यस्तव स्वभाव से ही असुंदर है, वह श्रावकों को भी युक्त कैसे?

उ. कूप दृष्टांत - नए नगरादि में प्रभूतजल के अभाव से लोग कुआं खोदते हैं। कुआँ खोदने में उनकी तृष्णादि बढ़ती है, मिट्टी-कीचड़ से शरीर गंदा होता है किंतु पानी मिलने से तृष्णादि और गंदगी दूर होती है। शेषकाल में अन्य लोग भी सुख के भागी होते हैं।

ऐसे ही द्रव्यस्तव में असंयम है किंतु परिणामवृद्धि होने से अन्य कर्म भी दूर होते हैं।

सव. स्तव शब्द कहा गया। अध्ययन शब्द का अर्थ अनुयोग द्वार में (भा. 1 Pg 110) कहा गया।

सूत्रालापक निष्पन्न निक्षेप का अवसर है। वह सूत्र में होता है। सूत्र अनुगम द्वार में होता है।

HAPPY THOUGHTS

(देखें अनुयोग द्वार chart pg 111 भाग 1) । उपोद्घातनिर्युक्ति वि.द्वार सामायिक अध्ययन अनुसार जानना ।

सूत्रानुगम, सूत्रालापक निक्षेप और सूत्र स्पर्शिक निर्युक्ति ये 3 द्वार यहाँ से साथ में चलेंगे। (देखें भाग 3 pg. 33)

सूत्रानुगम में अस्खलितादि गुण से युक्त सूत्र का उच्चार करना चाहिए। सूत्र –

सूत्र – लोगस्स उज्जोयगरे, धम्मतित्थयरे जिणे ।
अरिहंते कित्तइस्सं, ~~चउस~~ चउवीसंपि केवली ॥1॥

* इसकी व्याख्या - संहिता च पदं चैव पदार्थः पदविग्रहः ।
चालना प्रत्यवस्थानं व्याख्या सूत्रस्य षड्विधा ॥
(देखें भाग 3 pg 12।)

संहिता - पदों का उच्चार ।

पद - लोकस्य उद्योतकरान् धर्मतीर्थकरान् जिनान् ।
अर्हतः कीर्तयिष्यामि चतुर्विंशतिमपि केवलिनः ॥

पदार्थ और पदविग्रह –

लोक = लोक्यते-प्रमाणेन दृश्यते इति, जो प्रमाण ज्ञान से देखा जाए, वह पंचास्तिकाय स्वरूप।

उद्योतकर = केवलज्ञान से या केवलज्ञान पूर्वक वचन से सर्व लोक को प्रकाशित करने के स्वभाव वाले

धर्म = दुर्गतौ प्रपतन्तं आत्मानं धारयति।

तीर्थ = तीर्यते संसारसागरो अनेन ।

HAPPY THOUGHTS

धर्म एव तीर्थः अथवा धर्मप्रधानं तीर्थं धर्मतीर्थं।
ऐसे धर्मतीर्थ करने के स्वभाव वाले।
जिन= राग-द्वेष-कषाय-इन्द्रिय-परीषह-उपसर्ग-कर्म को जितने वाले।
अर्हन्त= अशोकादि 8 महाप्रातिहार्य वि. रूप पूजा के योग्य।
कीर्तन= नाम सहित स्तवना करूँगा।
केवली = केवलं ज्ञानं एषां इति।

अव. चालना-प्रत्यवस्थान का अवसर है। यहाँ सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्ति कहते हैं। चालना भी उसी में कहेंगे। (देखें भाग 3 Pg 123 अव.)

लोक शब्द -
गा. 1069 लोक के 8 निक्षेप - नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भव भाव
(द्वार गा.) पर्याय।

अव. नाम-स्थापना सुगम। द्रव्य लोक-
भा. 197 रूपी-अरूपी, सप्रदेश-अप्रदेश, नित्य-अनित्य ऐसे जीव-अजीव रूप जो द्रव्य वही द्रव्यलोक है।
* सुख दुःख ज्ञानोपयोग लक्षण वाला जीव है। शेष अजीव।
* जीव में कर्मयुक्त रूपी, कर्म रहित सिद्ध अरूपी।
अजीव में धर्म-अधर्म-आकाश अरूपी, पुद्गल रूपी।
* परमाणु सिवाय सभी अस्तिकाय सप्रदेश हैं।
अथवा
द्रव्य से परमाणु अप्रदेश, द्व्यणुकादि सप्रदेश
क्षेत्र से एकप्रदेशावगाढ़ ", द्विप्रदेशादिगाढ़ "

HAPPY THOUGHTS

काल से एकसमयस्थिति वाले अप्रदेश, द्व्यादिसमयस्थिति सप्रदेश
भाव से एकगुणकृष्णादि अप्रदेश, द्विगुणकृष्णादि सप्रदेश।

यही जीव-अजीव का समूह द्रव्य लोक है।
(चशब्द से-) अभिलाप्य- अनभिलाप्यादि धर्मों का समुच्चय।

हरिभद्रीय टीका → सप्रदेश-अप्रदेश → सामान्य विशेष रूप होने से परमाणु सिवाय सभी अस्तिकायों का सप्रदेशत्व-अप्रदेशत्व विचारना। परमाणु तो अप्रदेश ही है।

अन्य मत- जीव काल की अपेक्षा से नियमा सप्रदेश है (अनंत समय में वर्तना होने से), लब्धि की अपेक्षा से सप्रदेश या अप्रदेश है (विशेष विवक्षा से अनंत लब्धि स्वरूप, सामान्य विवक्षा से एक जाति रूप)।

टिप्पणक 'परमाणु तो अप्रदेश ही है'-
→ प्र. यदि सामान्य विशेष रूप से प्रदेशत्व-अप्रदेशत्व कहते हो तो परमाणु में सप्रदेशत्व भी होना चाहिए क्योंकि जैनों को तो कुछ भी वस्तु सामान्य-विशेषरूपता का उल्लंघन नहीं करती?
उ. परमाणुओं में तिर्यक्सामान्य है। स्वअवयव में व्याप्तत्व लक्षण वाला ऊर्ध्वसामान्य नहीं है क्योंकि वे निरंश निरवयव हैं।

मलयगिरीय टीका अव. जीव-अजीव की नित्यानित्यता —
भा. 198 गति, सिद्ध, भव्य, अभव्य, पुद्गल, अनागतकाल, अतीत काल और 3 काया, ऐसे जीव-अजीव की स्थिति 4प्र. की है।

HAPPY THOUGHTS

★ गा. की व्याख्या सामायिक अध्ययन अनुसार करना।
(देखें भाग 2

★ ४पु. की स्थिति- सादि-सांत वि. ४भांगे।

~~अव.~~

अव. क्षेत्र लोक-

भा. १९९ ऊर्ध्व-अधो और तिर्च्छ लोक में आकाश प्रदेशों को जिनकथित अनंत क्षेत्र लोक जान।

अव. काल लोक-

भा. २०० समय, आवलिका, मुहूर्त, दिवस, अहोरात्र, पक्ष, मास, संवत्सर, युग, पल्योपम, सागरोपम, उत्सर्पिणी, पुद्गल परावर्त।

★ काल रूप लोक ही काललोक।

अव. भव लोक-

भा. २०१ नारक, देव, मनुष्य, तिर्यंच जीव, इन भवों में वर्तते हुए भवलोक।

★ इन भवों में वर्तते जीव जो रस अनुभवते हैं, वह भवलोक।

अव. भाव लोक-

भा. २०२ ६पु. का भाव लोक- औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, पारिणामिक, सांनिपातिक।

★ सान्निपातिक = 2, 3, 4 भांगों के संयोग

टीप्पणक → सांनिपातिक भाव के अविरुद्ध 15 भेद-
नारकों को नरक गति औदयिक भाव, इंद्रियसंपन्नता क्षायोपशमिक, जीवत्वादि पारिणामिक भाव। इन 3 भावों का नरक गति

HAPPY THOUGHTS

में 1 भांगा। ऐसे ही तिर्यंच-देव-मनुष्य का भी 1-1 भांगा, कुल 4 भांगे इन 3 भावों के।
इन 3 भावों में क्षायिक भाव डालने तो 4 भावों के चारों गति में 4 भांगे क्योंकि क्षायिक सम्यक्त्व चारों गति में मिलता है। कुल 8 भांगे हुए।
क्षायिक की जगह औपशमिक भाव डालने पर 4 भावों के चारों गति में 4 भांगे क्योंकि पहले सम्यक्त्वप्राप्ति में औपशमिक भाव चारों गति में होता है। कुल 12 भांगे।
~~उपशम~~ दर्शनसप्तक को क्षय कर उपशमश्रेणि को प्राप्त करने वाले जीव को औदयिक-औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक पाँचों भाव का 1 भांगा, कुल 13 भांगे हुए।
केवली को औदयिक-क्षायिक-पारिणामिक का 1 भांगा, कुल 14।
सिद्ध को क्षायिक-पारिणामिक का 1 भांगा, कुल 15 भांगे।

ये सांनिपातिक भाव के 15 भेद अविरुद्ध कहे जाते हैं।
कुल 26 हो सकते हैं → द्विक संयोग — 10
त्रिक " — 10
चतुष्क " — 5
पंचक " — 1
26

ये 26 भेद विरुद्ध हैं क्योंकि ये 26 कभी-कभी ही किसी को प्राप्त होते हैं; अथवा प्ररूपणामात्र है। प्रस्तुत 15 तो कहे अनुसार प्राप्त होने से अविरुद्ध हैं।

HAPPY THOUGHTS

[15 भेद की Summary –

औदयिक - क्षायोपशमिक - पारिणामिक	4	(चारगति)
औद. - क्षायो. - पारि. - क्षायिक	4	(")
औद. - क्षायो. - पारि. - औपशमिक	4	(")
पाँचों भाव	1	(दर्शन सप्तक क्षय कर उपशमश्रेणि में)
औदयिक - क्षायिक - पारिणामिक	1	(केवली)
क्षायिक - पारिणामिक	1	(सिद्ध)
	15	]

मलयगिरीय टीका गा. २०३ जिस जीव को तीव्र राग या द्वेष उदीर्ण हुआ, उसे अनंतजिन-कथित भाव लोक जान।
क्योंकि वह जीव उस भाव के साथ लोक्य है।

स्व. पर्याय लोक कहते हैं (देखें द्वारगा. 1069 भाग 4 pg. 15) | पर्याय धर्म को कहते हैं। यहाँ नैगम और मूढ़ नय के मत से कहते हैं –

*↓ गा. २०४ संक्षेप से पर्यायलोक 4प्र. का है – द्रव्य के गुण, क्षेत्र के पर्याय, भव के अनुभाव और भाव का परिणाम।

* द्रव्य के रूपादि गुण, क्षेत्र के अगुरुलघु पर्याय (अन्य मत- भरतादि पर्याय), नरकादि भव के तीव्र दुःखादि रस और जीव-अजीवादि भाव पदार्थ के अज्ञान से ज्ञान होने, नील से लाल होने रूप परिणाम पर्याय लोक हैं।

टीप्पणक * नैगम नय - मूढ़ नय →
नैगम सिवाय के 6 नय में कोई केवल सामान्य-वादी हैं या कोई केवल विशेषवादी हैं। यदि उनमें से सामान्यवादी

HAPPY THOUGHTS

का आश्रय ले तो वह पर्यायों को सामान्य से एक मानने के कारण पर्यायलोक के 5 पु. नहीं मानता। विशेषवादी नय पर्यायों को भिन्न मानने से अनंत पर्यायलोक मानता है।

नैगम नय अनेक रूप वाला होने से 5 पु. का भी मानता है। अतः 'उसका आश्रय करते हैं' अथवा 'कालिकश्रुत नय रहित है' इस वचन के आश्रय से 5 पु. विवक्षित करते हैं।

मलयगिरीय टीका

अव. द्रव्य के गुण वि. बताते हैं -

भा. 205 वर्ण-रस-गंध-संस्थान-स्पर्श-स्थान-गति-वर्णक भेदों को और बहुत प्रकार के परिणामों को पर्यायलोक जान।

★ 5 पु. के वर्ण, 5 रस, 2 गंध, 5 संस्थान (परिमंडलादि), 8 स्पर्श, प्रदेश भेद से अनेक पु. के स्थान, 2 गति (स्पृशद्-अस्पृशद्), एकगुणकृष्णादि वर्ण के भेद। और परिणाम अनेक प्रकार के। शेष 2 द्वारों को स्वयं विचारना।

अव. 'लोक' के पर्यायवाची -

गा. 1070 आलोक, प्रलोक, लोक, संलोक एकार्थक हैं। इसलिए ये 8 पु. का लोक लोक कहलाता है।

★ द्वार गा. 1069 पूर्ण (देखें Pg 15)।

अव. उद्योत शब्द (देखें सूत्र Pg 14) -

गा. 1071 उद्योत 2 पु. - द्रव्य, भाव। अग्नि, चंद्र, सूर्य, मणि, विद्युत द्रव्योद्योत है।

★ उद्योत्यन्ते अनेन इति उद्योतः।

★ अग्नि वि. घटादि का उद्योत करने पर भी नित्यानित्यादि सभी धर्म प्रगट न करने से सम्यक् प्रतिपत्ति का अभाव

HAPPY THOUGHTS

होने से ये द्रव्योद्योत हैं।

अव. भावोद्योत –

गा.1072 सर्व भाव को देखने वालों द्वारा जैसा कहा गया है, वैसा ज्ञान भावोद्योत है। उसके उपयोग करने में भावोद्योत जान।

* घटादि वस्तु की सम्यक् प्रतिपत्ति करने से सम्यक्ज्ञान भावोद्योत है। वह भी मात्र उपयोग होने पर ही है, अन्यथा नहीं।

अव. जिस उद्योत से जिन लोक के उद्योतकर हैं, वह कहते हैं–

गा.1073 जिन द्रव्योद्योत से लोक के उद्योतकर नहीं हैं। 24 जिनवर भावोद्योतकर हैं।

* केवलज्ञान से स्वयं के उद्योतकर हैं। लोक प्रकाशक वचन की अपेक्षा कुछ भव्यों के लिए उद्योतकर हैं। इसीलिए 'होते हैं' लिखा है, 'होते ही हैं' नहीं लिखा।

अव. द्रव्य-भावोद्योत में अंतर–

गा.1074 द्रव्योद्योत का प्रकाश परिमित क्षेत्र में प्रकाश करता है। भावोद्योत का प्रकाश लोकालोक को प्रकाशित करता है।

* 'पगासई' के 2 अर्थ – प्रकाशित करता है और प्रकाशित होता है। जब प्रकाशित करना अर्थ लो तब प्रकाश्य वस्तु अध्याहार लाना, जब प्रकाशित होना अर्थ लो तब वह स्वयं प्रकट होता है, ऐसा समझना।

HAPPY THOUGHTS

अव. 'उद्योत' शब्द कहा। 'कर' शब्द का अवसर होने पर भी उसे यहाँ न कहकर 'धर्मतीर्थंकरान्' पद में कहेंगे।

धर्म शब्द — (देखें सूत्र Pg 14) —

गा. 1075 धर्म 2 प्र. द्रव्य, भाव | द्रव्य में द्रव्य का धर्म या द्रव्य या तिक्तादि स्वभाव या गम्यास्त्री या कुलिंग |

* द्रव्य धर्म = (1) द्रव्य-अनुपयुक्त का धर्म |
(2) द्रव्य ही धर्म - धर्मास्तिकायादि |
(3) द्रव्य का स्वभाव - तिक्तादि |
(4) गम्यास्त्री धर्म - किसी को मामा की पुत्री गम्य है, किसी को अगम्य |
(5) कुलिंग - कुतीर्थिक |

अव. भाव धर्म —

गा. 1076 भाव धर्म 2 प्र. - श्रुत ~~व~~, चरण | श्रुत में स्वाध्याय | चरण में क्षान्त्यादि 10 प्र. का ~~धर्म~~ श्रमणधर्म |

अव. 'धर्म' कहा | 'तीर्थ' शब्द (देखें सूत्र Pg 14) —

गा. 1077 नाम स्थापना द्रव्य भाव तीर्थ | एक-एक अनेक प्र. का जानना |

अव. तद्व्यतिरिक्त द्रव्य तीर्थ —

गा. 1078 दाहोपशम, तृष्णादि छेदन, मल दूर करना, 3 अर्थों से युक्त होने से वह द्रव्य से तीर्थ कहलाता है |

* द्रव्य तीर्थ - मागधादि | इसे द्रव्य तीर्थ कहने के 3 कारण - दाहोपशमादि |

HAPPY THOUGHTS

अव. भाव तीर्थ —

गा. 1079-80 क्रोध उपशांत होने पर दाह का उपशम होता है | लोभ का निग्रह

होने पर तृष्णा छेदन होता है। बहुत भवों से संचित 8प्र. की कर्मरज तप-संयम से धोने (मलक्षय) से भावतीर्थ होता है।

गा.1081 सर्व जिनवरों द्वारा दर्शन-ज्ञान-चारित्र में नियुक्त होने से तीर्थ होता है।

अव. 'तीर्थ' कहा गया। 'कर' शब्द (देखें सूत्र पृ. 14) –

गा.1082 नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव, कर के 6 निक्षेप हैं।

अव. नाम-स्थापना सुगम। द्रव्य कर –

गा.1083-4 गाय-भैंस-ऊँट-पशु-बकरी का कर जानना। तृण-पलाल-बुस-काष्ठ-अंगार कर। शीता-उंबर-जंघा-बलीवर्द-घर-चर्म-चोल्लक कर, ~~18 प्र. से कर की उत्पत्ति~~, उत्पत्ति कर, ये 18 कर हैं।

* गाय वि. पशुओं को ~~बेचकर~~ कर लेना यानि 1 गाय कर रूप में देना वि.।
तृण-पलाल-बुस घास विशेष।
शीता = लांगल पद्धति, किसान से धान्य कर रूप लेना।
उंबर = घर की डेली। चोल्लक = भोजन।
उत्पत्तिकर = स्वकल्पना से यानि स्वेच्छा से निश्चित करे।

अव. क्षेत्र करादि –

गा.1085 जिस क्षेत्र और जिस काल में कर हो, वह क्षेत्र-काल कर। भाव में 2 प्र. प्रशस्त-अप्रशस्त।

अव. अप्रशस्त के त्याग से प्रशस्त प्राप्त होने से अप्रशस्त भावकर –

HAPPY THOUGHTS

गा.1086 कलहकर, डमरकर, असमाधिकर, अनिवृत्तिकर आदि अप्रशस्त भाव कर हैं।

* प्र. ऐसा प्रयोजन होने पर गा.1085 में उद्देश में भी पहले अप्रशस्त क्यों नहीं रखा?

उ. मुमुक्षु को प्रशस्त ही सेवना चाहिए, यह बताने के लिए।

* कलहकर – वाचिक झगड़े करने वाला।
डमरकर – मन-वचन-काया से विचित्र ताड़न करने वाला।
असमाधिकर – अस्वास्थ्य रूप कायादि चेष्टा।
अनिर्वृत्तिकर – पीड़ा करने वाला।

अव. प्रशस्तभाव कर –

गा.1087 अर्थकर हितकर कीर्तिकर गुणकर यशकर अभयंकर निर्वृत्तिकर कुलकर तीर्थंकर अंतकर।

* अर्थ = विद्या या अपूर्व धनार्जन।
हित = परिणामपथ्य, कुशलानुबंधी।
कीर्ति = दान-पुण्य के फल रूप।
गुण = ज्ञानादि।
यश = पराक्रम के फल रूप।
अंत = कर्म का या संसार का अंत।

अव. 'कर' शब्द कहा गया। 'जिन' 'अरिहंत' शब्द (देखें सूत्र pg.14) –

गा.1088 क्रोध-मान-माया-लोभ जितने वाले जिन। अरि को हनन करने वाले, रज का हनन करने वाले अरिहंत।

HAPPY THOUGHTS

अव. 'कीर्तयिष्यामि' शब्द (देखें सूत्र pg 14) –

गा.1089 देव-मनुज-असुर रूप लोक को कीर्तनीय की कीर्तन करूँगा, जिनके द्वारा दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप-विनय बताया गया।

अव. 'चतुर्विंशति' 'अपि' शब्द –

गा.1090 24 संख्या कहे जाने वाले ऋषभादि जिन की है। अपि शब्द के ग्रहण से ऐरावत-महाविदेह के जिन भी लेना।

अव. 'केवली' शब्द –

गा.1091 संपूर्ण लोक को केवल समान जानते और देखते हैं, केवल-चारित्री और केवलज्ञानी हैं इसलिए वे केवली हैं।

★ 'केवलकल्प लोक को जानते' यहाँ कल्प शब्द उपमा अर्थ में है।

'सामर्थ्ये वर्णनायां च, छेदने करणे तथा।
औपम्ये चाधिवासे च, कल्पशब्दं विदुर्बुधाः॥'

[सामर्थ्य – कल्प् धातु का सामान्य अर्थ 'कल्पता है'।
वर्णना – eg. कल्पितः वर्णितः श्लाघितः देवदत्तः।
छेदने – eg. कल्पितं छेदितं द्विधाकृतं वस्त्रं।
करण – eg. ब्राह्मणार्थं कल्पिताः यूपाः, कृताः।
औपम्य – eg. समुद्रकल्पं इदं तडागं।
अधिवास – eg. कल्पिता अधिवासिता सज्जिता प्रतिमा स्नानाय।
– टीप्पणक]

यहाँ कल्प शब्द उपमा अर्थ में जानना।
अर्थात् केवली संपूर्ण लोक को केवल समान, एकमात्र रूप जानते हैं।

HAPPY THOUGHTS

★ प्र. यहाँ अवसर बिना ही केवलचारित्री क्यों कहा?
उ. केवलचारित्र पूर्वक ही केवलज्ञान की प्राप्ति होती है, यह बताने।

★ ऐसे सूत्र के प्रथम श्लोक (देखें Pg 14) की व्याख्या पूर्ण हुई। अब चालना-प्रत्यवस्थान कहते हैं —
प्र. 'लोक' कहना ठीक नहीं क्योंकि लोक तो परिमित है, केवल-उद्योत अपरिमित है। अतः सामान्य से उद्योतकर या लोकालोक के उद्योतकर कहना चाहिए।
उ. यहाँ लोक शब्द पंचास्तिकाय लेना। अलोक आकाशास्तिकाय में आ ही जाता है।

प्र. 'लोक के उद्योतकर' कहने पर धर्मतीर्थंकर कहने की जरूर नहीं थी क्योंकि जो जो लोक के उद्योतकर हैं, वे धर्मतीर्थंकर ही हैं।
उ. ग्राम के एक देश में ग्राम शब्द का प्रयोग होता है। वैसे ही यहाँ कोई लोक के एक देश में लोक शब्द का प्रयोग समझकर अवधिज्ञान-विभंगज्ञान या सूर्य-चंद्र उद्योतकर न समझे, इसलिए धर्मतीर्थंकर कहा।

प्र. तो धर्मतीर्थंकर कहना चाहिए, लोक के उद्योतकर नहीं कहना चाहिए।
उ. लोक में नदी वि. में धर्म के लिए अवतरण करने वाले भी धर्मतीर्थंकर कहलाते हैं। अतः कोई उन्हें न समझे इसलिए लोक के उद्योतकर कहा है।

HAPPY THOUGHTS

पू. जिन शब्द अतिरिक्त है क्योंकि यथोक्त जीव जिन ही होते हैं।

उ. कोई ऐसा मानते हैं—

ज्ञानिनो धर्मतीर्थस्य कर्तारः परमं पदम्।
गत्वाऽऽगच्छन्ति भूयोऽपि, अशं तीर्थनिकारतः॥

ये रागादि को जीतने वाले नहीं होते इसीलिए पुनः जन्म लेते हैं। ऐसे तीर्थंकर में किसी की बुद्धि न हो इसलिए वे जिन कहा।

पू. तो जिन ही कहो, लोकोद्योतकरादि न कहो।

उ. विशिष्ट श्रुतधरादि भी जिन कहलाते हैं जैसे- श्रुतजिन, अवधिजिन, मनःपर्यायजिन, छद्मस्थवीतराग आदि। इनके व्यवच्छेद के लिए लोकोद्योतकरादि कहा।

पू. अर्हन्त नहीं कहना चाहिए क्योंकि उक्तस्वरूप वाले अर्हन्त ही होते हैं।

उ. अर्हन्त यहाँ विशेष्य है, शेष सभी विशेषण हैं।

पू. तो अर्हंत ही कहो।

उ. वे विशेषण भी उपर्युक्त युक्ति से सफल हैं।

पू. केवली नहीं कहना चाहिए क्योंकि उक्तस्वरूप वाले केवली ही हैं। के उक्तस्वरूप वाले अर्हंत का केवलित्व से व्यभिचार नहीं है। व्यभिचार होने पर ही विशेषणग्रहण सफल है e.g. नीलोत्पल।

HAPPY THOUGHTS

उ. यथोक्त स्वरूप वाले केवली होते हैं, ऐसा स्वरूप बताने के लिए यह स्वरूप विशेषण है।

~~एकांत~~ ~~से~~ व्यभिचार होने पर ही विशेषणग्रहण सफल है, ऐसा एकांत नहीं है। शिष्ट पुरुषों की उक्ति में उभयपद-व्यभिचार, एकपदव्यभिचार, स्वरूप विशेषण के प्रयोग दिखते हैं। उभयपदव्यभिचार में नीलोत्पल।

एकपदव्यभिचार में पृथ्वी द्रव्य।

स्वरूप में परमाणु अप्रदेश।

प्र. तो केवली ही कहो। लोकोद्योतकरादि न कहो।

उ. श्रुतकेवली वि. के व्यवच्छेद के लिए कहा।

इस प्रकार यहाँ गमनिकामात्र है। द्रव्यादि संयोग की अपेक्षा से, नय के मत से विशेषणों की सफलता विचारना।

अब. कीर्तन करने का कहा तो अब सूत्रकार कीर्तन करते हैं-

सूत्र - उसभमजिअं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च।

पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥2॥

सुविहिं च पुप्फदंतं सीयल सिज्जंस वासुपुज्जं च।

विमलमणंतं च जिणं धम्मं संतिं च वंदामि ॥3॥

कुंथुं अरं च मल्लिं वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च।

वंदामि रिट्ठनेमिं पासं तह वद्धमाणं च ॥4॥

* यहाँ भगवान् के नाम व्युत्पत्ति सहित सामान्य और विशेष लक्षण कहना चाहिए-

HAPPY THOUGHTS

ऋषभ / वृषभ

वृष् धातु उद्वहन अर्थ में। समग्र संयम के भार को वहन करने वाले वृषभ (यह सामान्य लक्षण हुआ)। सभी भगवंत उपर्युक्त रूप वाले हैं अतः विशेष हेतु –

गा.1092 (पूर्वार्ध) भगवान् के दोनों जांघ पर ऊर्ध्वमुखी बैल का लांछन था और मरुदेवी ने महास्वप्न में वृषभ पहले देखा इसलिए वृषभ नाम रखा। शेष तीर्थंकर की माता पहले गज देखती है।

अजित

परीषह-उपसर्गादि से नहीं जीताने वाले अजित। सभी भगवंत ऐसे हैं, इसलिए विशेष हेतु –

गा.1092 (उत्तरार्ध) भ. की माता अक्ष (पांसे) में जीती अतः अजित हुए। वृद्धसंप्रदाय - भ. के माता-पिता द्यूत खेलते थे। पहले पिता जीतते थे। भ. के गर्भ में आने के बाद माता जीती।

संभव

जिसमें उपजातिशय वि. गुण संभव हैं, वे संभव। विशेष हेतु –

गा.1093 (पूर्वार्ध) जिनके गर्भ में आने पर धान्य बढ़े, अतः संभव कहलाए।

अभिनंदन

देवेंद्रादि द्वारा जिनका अभिनंदन किया जाए। विशेष हेतु –

गा.1093 (उत्तरार्ध) गर्भ में आने के बाद शक्र द्वारा बार-बार अभिनंदन किए जाने से अभिनंदन।

HAPPY THOUGHTS

सुमति
जिसकी मति सुंदर हो। विशेष हेतु -
गा.1094 (पूर्वार्ध) सभी निश्चयों में माता की मति संपन्न हुई अतः सुमति।

★ वह संप्रदाय - 2 शोक्य का पति मरा x पुत्र के लिए लड़े x सुमतिनाथ की माता बोली - मेरा पुत्र जन्म लेगा और यौवन में इस अशोकवृक्ष के नीचे निर्णय करेगा x एक बोली - ठीक है x पुत्र की माता - अभी निर्णय करो x भ. की माता ने जान लिया कि यही माता है।

पद्मप्रभ
निष्पंक होने से कमल जैसी प्रभा है जिनकी। विशेष हेतु -
गा.1094 (उत्तरार्ध) गर्भ में होने पर माता को पद्मशयन का दोहद हुआ था तथा भ. पद्म वर्ण वाले हैं।

सुपार्श्व
सुंदर है पार्श्व जिसके। विशेष हेतु -
गा.1095 (पूर्वार्ध) गर्भ में होने पर माता सुंदर पार्श्व वाली हुई। ~~और भ.~~

चंद्रप्रभ
चंद्र जैसी प्रभा वाले (सौम्य)। विशेष हेतु -
गा.1095 (उत्तरार्ध) गर्भ में होने पर माता को चंद्रपान का दोहद हुआ और भ. चंद्र जैसी आभा वाले हैं।

सुविधि
सुंदर विधि वाले, विधि यानि सर्वत्र कौशल। विशेष हेतु -

HAPPY THOUGHTS

गा.1096 गर्भ में होने पर माता सभी विधि में कुशल हुई। (पूर्वार्ध)

शीतल

सभी जीवों का संताप दूर करने और आह्लाद उत्पन्न करने से शीतल। विशेष हेतु –

गा.1096 (उत्तरार्ध) गर्भ में होने पर पिता का दाह उपशांत किया।

★ भ. के पिता को पित्तदाह हुआ था। वह औषधों से भी ठीक नहीं हुआ। भ. के गर्भ में आने पर माता के स्पर्श से ही ठीक हो गया।

श्रेयांस

सकलभुवन के हितकारी होने से। विशेष हेतु –

गा.1097 (पूर्वार्ध) महापुरुषों के योग्य शय्या के आरोहण का माता को दोहद हुआ।

★ भ. के पिता की पितृपरंपरा से आई हुई एक देवाधिष्ठित शय्या की पूजा की जाती थी। जो उस पर बैठता उसे देवी उपसर्ग करती। भ. गर्भ में आने पर रानी को उस पर बैठने का दोहद हुआ। रानी बैठी। देवी रोकर चली गई, वह तीर्थंकर के प्रभाव से उपसर्ग न कर सकी। ऐसे गर्भ के प्रभाव से रानी का श्रेय हुआ।

वासुपूज्य

वासु=देव। से देवों को पूज्य=वासुपूज्य। विशेष हेतु –

HAPPY THOUGHTS

गा.1097 भ. गर्भ में होने पर देवों द्वारा रत्नों से माता पूजी गई।
(उत्तरार्ध)
★ भ. गर्भ में होने पर वासव यानि इंद्र ने बार-बार माता को पूजा अथवा
इंद्र राजकुल को बार-बार वसु यानि रत्नों से पूजता (पूरता) है।

विमल

विगतमल विमल। विशेष हेतु –

गा.1098 (पूर्वार्ध) गर्भ में होने पर माता का शरीर और बुद्धि निर्मल हुए।

अनंत

अनंत कर्मों के जय से या अनंत ज्ञानादि से अनंत। विशेष –

गा.1098 (उत्तरार्ध) रत्न से विचित्र अनंत माला माता ने स्वप्न में देखी।
★ स्वप्न में माता ने रत्न से विचित्र-खचित अनंत यानि बहुत बड़ी माला देखी।

धर्म

दुर्गति में गिरते जीवसमूह को धारण करने वाला धर्म।
विशेष हेतु –

गा.1099 (पूर्वार्ध) गर्भ में होने पर माता सुंदर धर्म वाली हुई।
★ गर्भ में होने पर माता विशेष से दान-दयादि रूप धर्म में तत्पर हुई।

HAPPY THOUGHTS

शांति

शांति स्वरूप होने से शांति। विशेष—

गा.1099 गर्भ में होने पर अशिव का उपशम हुआ। (उत्तरार्ध)

* पहले बड़ा अशिव था। भ. गर्भ में आने पर अशिव का उपशम हुआ।

कुंथु

कुः - पृथ्वी, तस्यां स्थितः कुन्थुः। पृथ्वी पर रहे। विशेष—

गा.1100 (उत्तरार्ध) (पूर्वार्ध)

माता ने स्वप्न में पृथ्वी पर रहा रत्न से विचित्र स्तूप देखा।

* माता स्वप्न में मनोहर-उन्नत पृथ्वीप्रदेश पर रहे और रत्न खचित स्तूप को देखकर जागी थी।

मलयगिरिजी म. की टीका इसके आगे उपलब्ध नहीं है। अतः यहाँ से हरिभद्रसूरिजी म. की वृत्ति का मुख्य आधार लिया है। (का.ब.3, 2074 Kailashnagar, Surat)

(हरिभद्रसूरि म. ने 'सिद्धाणं नमुक्कारो... वि सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-साधु नमस्कार की गाथाओं (989-92 वि.) को निर्युक्ति में नहीं गिना, अतः उनका निर्युक्ति क्रमांक 1088 यहाँ है)

हरिभद्रीय वृत्ति

अर

सर्वोत्तम और महासत्त्व वाले कुल में जो उत्पन्न होकर कुल की वृद्धि करते हैं, उन्हें वृद्ध अर कहते हैं (जैसे रथ के पहिए में अर मुख्य, वैसे कुलवृद्धि में तीर्थंकर मुख्य)। विशेष—

HAPPY THOUGHTS

गा.1088 माता ने स्वप्न में मूल्यवान् अर देखा।
(उत्तरार्ध)

मल्लि

परीषहादि मल्ल को जीतने से मल्लि (प्राकृतशैली में)।
विशेष हेतु –

गा.1089 माता को श्रेष्ठ सुगंधी फूलों की माला से बनी शय्या में
(पूर्वार्ध) सोने का दोहद हुआ।

* गर्भ में भ. होने पर माता को सर्व ऋतु के उत्कृष्ट सुगंध वाले पुष्प ~~से बनी~~ की मालाओं से बनी शय्या में सोने का दोहद हुआ था, जो देवी ने पूर्ण किया है।

मुनिसुव्रत

मन्यते जगत: त्रिकालावस्थां मुनि:, सुंदर व्रत वाले सुव्रत।
विशेष हेतु –

गा.1089 गर्भ में होने पर माता सुव्रता हुई।
(उत्तरार्ध)

नमि

परीषह-उपसर्गादि को झुकाने से नमि (प्राकृत)। विशेष –

गा.1090 तीर्थंकर के दर्शन मात्र से आस-पास के राजा झुके।
(पूर्वार्ध)

* दुष्ट ऐसे प्रत्यंत राजाओं द्वारा नगर घेरा गया। तभी भ. का गर्भ में जन्म हुआ। गर्भ के पुण्य से प्रेरित माता को किले पर चढ़ने की श्रद्धा हुई। चढ़ी। राजाओं ने देखा। गर्भ के प्रभाव से वे देखकर झुक गए।

HAPPY
THOUGHTS

<u>नेमि</u>

धर्म-चक्र के नेमि की तरह होने से नेमि (नेमि = चक्र की धार, circumference)। विशेष –

गा.1090 (उत्तरार्द्ध) गर्भ में होने पर माता ने रिष्ट रत्न मय, उड़ता हुआ, बहुत बड़ा नेमि स्वप्न में देखा था।

<u>पार्श्व</u>

पश्यति सर्वभावान् पार्श्वः (प्राकृत)। विशेष –

गा.1091 (पूर्वार्द्ध) माता ने अंधकार में ~~स्वप्न~~ सर्प देखा।

★ भ. गर्भ में होने पर स्वप्न में माता ने 7 फन वाला सर्प देखा था। तथा शय्या में सोती हुई माता ने अंधकार में पास में आते हुए सर्प को देखकर राजा का शय्या से निकला हुआ हाथ ऊपर चढ़ाया तथा राजा को कहा- साँप जा रहा है। राजा- तुझे कैसे पता? । माता- मुझे दिख रहा है। राजा ने सोचा- गर्भ के प्रभाव से इसे गाढ़ अंधकार में भी दिख रहा है।

<u>वर्धमान</u>

उत्पत्ति से लेकर ज्ञानादि द्वारा बढ़े। विशेष –

गा.1091 (उत्तरार्द्ध) गर्भ में होने पर ज्ञातकुल धनादि से विशेष बढ़ा।

अव. सूत्र की 3 गा. का वर्णन पूर्ण (देखें पृ 28 पर सूत्र 1) अब आगे का सूत्र –

HAPPY
THOUGHTS

सूत्र- एवं मए अभिथुआ विहुयरयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसंपि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु ॥5॥

* एवं - ऊपर कही हुई रीति से।

मए = मेरे द्वारा।

अभिथुआ - नाम द्वारा कीर्तन की गई।

* विहुयरयमला = दूर करी है रज और मल जिसने।
रज - बध्यमान कर्म, मल - बद्ध कर्म अथवा
रज - बद्ध कर्म, मल - निकाचित कर्म अथवा
रज - ईर्यापथ, मल - सांपरायिक कर्म।

* रज-मल दूर करने से ही 'पहीणजरमरणा' = दूर हो गए हैं जरा और मरण जिनके।

* चउवीसंपि - 24 जिन, अपि से अन्य भी जिन।

* जिनवरा - श्रुतादि जिनों में प्रधान।

* तित्थयरा - श्रुतादि जिनों में प्रधान तो सामान्य केवली भी होते हैं अतः उनके व्यवच्छेद के लिए यह पद रखा।

* मे पसीयंतु = मुझ पर प्रसन्न हों।

* प्र. रागादि रहित होने से वे कैसे प्रसन्न होंगे?
उ. वे रागादि रहित होने से प्रसन्न नहीं होते किंतु अंतःकरण की शुद्धि पूर्वक स्तुति करने वाले को अभिलषित अर्थ की प्राप्ति होती है।

सूत्र - कित्तियवंदियमहिआ जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा।
आरुग्गबोहिलाभं समाहिवरमुत्तमं दिंतु॥6॥

HAPPY
THOUGHTS

* 'कित्तिय वंदिय मया' ऐसा पाठान्तर है।

* उत्तमा = ऊर्ध्वं तमसः उत्तमसः अंधकार से ऊपर अथवा प्रधान।

* सिद्ध = सितं ध्मातं एषां इति। बँधे हुए कर्म नष्ट हुए हैं जिनके। अर्थात् कृतकृत्य।

* आरुग्गबोहिलाभं → अरोग का भाव आरोग्य यानि सिद्धत्व। सिद्धत्व के लिए बोधिलाभ।
बोधिलाभ = परलोक। भविष्य में धर्म की प्राप्ति।

* यहाँ तक का भावार्थ – कीर्तित, वंदित और पूजित ये जो लोग के (में) उत्तम सिद्ध हैं, वे सिद्धत्व के बोधिलाभ दें।

* प्र. जब तक सिद्ध होने के लिए बोधिलाभ न हो, तब तक क्या?
उ. समाधि दें।
समाधि यानि समाधान। २ प्र. द्रव्य, भाव।
द्रव्यसमाधि = जिन द्रव्य के ~~सम्म~~ उपयोग से स्वास्थ्य हो अथवा जो द्रव्य का अविरोध हो।
भाव समाधि = ज्ञानादि से स्वस्थता।

* इनमें से द्रव्यसमाधि के व्यवच्छेद के लिए 'वरं' पद लिखा।
भाव समाधि भी अनेक प्र. की होने से उत्तम ऐसी भाव समाधि कही।

HAPPY THOUGHTS

★ प्र. क्या सिद्धों का देने का सामर्थ्य है?
उ. नहीं।
प्र. तो ऐसा क्यों कहते हो?
उ. भक्ति से। आगे गा. 1095 में कहेंगे कि यह प्रार्थना असत्यामृषा है। इनकी भक्ति से स्वयमेव इनकी प्राप्ति हो जाती है।

अव. सूत्र की 2 गाथा की संक्षेप में व्याख्या की। अब सूत्रस्पर्शिका निर्युक्ति से इनका विस्तार करते हैं। अभिस्तुति और कीर्तन के एकार्थक –
गा. 1092 स्तुति, स्तवन, वंदन, नमस्कार एकार्थक हैं। कीर्तन, प्रशंसन, विनय, प्रणाम एकार्थक हैं।

अव. 'उत्तमा' पद की व्याख्या –
गा. 1093 मिथ्यात्वमोहनीय, ज्ञानावरण, चारित्रमोह त्रय के क्षय से मुक्त होने से उत्तम।
★ मिथ्यात्व मोहनीय से दर्शन सप्तक और चारित्र मोह से 12 कषाय (अनंतानुबंधी सिवाय, अनंतानुबंधी दर्शन सप्तक में) + 9 नोकषाय लेना।

अव. 'आरुग्गबोहिलाभं' वि. पदों में पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष –
गा. 1094 'आरुग्गबोहिलाभं समाहिवरमुत्तमं दिंतु' क्या यह निदान नहीं है? (पूर्वपक्ष) (उत्तरपक्ष) यहाँ विभाषा करना।
★ प्र. आपने जो कहा कि 'आरुग्गबोहिलाभं...' वि. क्या यह निदान है? यदि निदान है तो इसका क्या काम?

HAPPY THOUGHTS

यदि निदान नहीं है तो उच्चारण व्यर्थ ही होगा।

उ. यहाँ विभाषा यानि विषय-विभाग के व्यवस्थापन से व्याख्या करना।

यह निदान नहीं है क्योंकि कर्मबंध का हेतु नहीं है।

पू. कर्मबंध का हेतु क्यों नहीं है?

उ. बंध हेतु मिथ्यात्व-अविरति-प्रमाद-कषाय-योग 5 हैं। मुक्ति की प्रार्थना में इन 5 में से एक भी संभव नहीं है। इनका उच्चारण व्यर्थ भी नहीं है क्योंकि इससे ~~अन्त~~ अन्तःकरण की शुद्धि होती है।

अव. (पूर्वपक्ष) यह निदान नहीं है तो भी दुष्ट ही है। इस स्तुति से वे सिद्ध आरोग्यादि देंगे या नहीं? यदि देंगे तो रागादि वाले होने की आपत्ति, यदि नहीं देंगे तो 'ये दाता नहीं है' ऐसा जानते हुए भी प्रार्थना करने में मृषावाद होने की आपत्ति?—

गा. 1095 यह असत्यामृषा भाषा है। यह भक्ति से कहा गया है। प्रेम-द्वेष क्षय करने वाले सिद्ध समाधि और बोधि नहीं देते।

* यह असत्यामृषा भाषा है। यह भाषा आमंत्रणी वि. अनेक प्रकार की है। यहाँ याच्या होने से याचनी भाषा का अधिकार है।

* प्र. रागादिरहित होने से सिद्ध कुछ देते नहीं है तो ये बोलने से क्या?

उ. ये तो भक्ति से कहा गया है।

HAPPY THOUGHTS

गा.1096 जो उन्हें देना था, वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र उप.का
उपदेश सभी जिनवरों ने दिया है।

उत्था. यदि वे सभी अभिलषितार्थ देने के सामर्थ्य रहित हैं तो
उनकी भक्ति क्यों उपयोगी है? –

गा.1097 जिनवरों की भक्ति से पूर्वसंचित कर्म नष्ट होते हैं जैसे आचार्य को
नमस्कार करने से विद्या और मंत्र सिद्ध होते हैं।

गा.1098 राग-द्वेष का क्षय करने वाले जिनवरों की परम भक्ति से
~~आरू~~ आरोग्यबोधिलाभ और समाधिमरण प्राप्त होते हैं।

★ समाधिमरण प्राप्त होने पर आरोग्यबोधिलाभ अवश्य प्राप्त होता
है अत: समाधिमरण को बोधिलाभ का हेतु जानना।

उत्था. वर्तमान में बोधि प्राप्त होने पर जिनभक्ति से पुन: बोधि
प्राप्त होगा ही तो वर्तमान में दुष्कर अनुष्ठान (चारित्र)
करने से क्या? ऐसा कहकर अनुष्ठान में प्रमादी जीव
को औपदेशिक गाथा कहते हैं: –

गा.1099 वर्तमान में प्राप्त बोधि को अनुष्ठान से सफल न करता
1100 और भविष्य में अन्य बोधि की प्रार्थना करता है
जड़! तू इस और अन्य बोधि को भी चूकेगा। तू अन्य
बोधि को किस मूल्य से प्राप्त करेगा?।

गा.1101 जो तप-संयम में उद्यमवान है, वह चैत्य-कुल-गण-संघ-
आचार्य-प्रवचन-श्रुत, सभी स्थानों में कृत्य
करता ही है।

HAPPY THOUGHTS

अब. सूत्र की गा. 5-6 की व्याख्या हुई। अब आगे का सूत्र –

सूत्र- चंदेसु निम्मलयरा आइच्चेसु अहियं पयासयरा।
साहगरवरगंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥7॥

* प्राकृतशैली से और आर्ष होने से 'चंदेसु' वि. में पंचमी के अर्थ में सप्तमी जानना।

* चंदेसु निम्मलयरा - सकल कर्म दूर करने से चंद्रों से भी अधिक निर्मल।
* आइच्चेसु अहियं पयासयरा - केवलोद्योत से विश्व को प्रकाशित करने से सूर्य से भी अधिक प्रकाश करनेवाले।
* सागरवरगंभीरा - परीषहोपसर्गादि से अक्षोभ्य होने से श्रेष्ठ सागर यानि स्वयंभूरमण से भी अधिक गंभीर।
* ऐसे सिद्ध मुझे सिद्धि यानि परमपद की प्राप्ति दो।

अब. इस गाथा की सूत्रस्पर्शिकानिर्युक्ति-

गा. 1102 चंद्र-सूर्य-ग्रहों की प्रभा परिमित क्षेत्र को प्रकाशित करती है। केवलज्ञान का लाभ लोकालोक को प्रकाशित करता है।

* अनुगम द्वार पूर्ण (देखें Pg 7 पर अव. तथा 10 पर * Star)। नय द्वार सामायिक अध्ययन की तरह जानना।

व्याख्यायाध्ययनमिदं प्राप्तं यत्कुशलमिह मया तेन
जन्मप्रवाहहतये कुर्वन्तु जिनस्तवं भव्याः ॥

श्री-चतुर्विंशतिस्तव अध्ययनं समाप्तम् ॥

HAPPY THOUGHTS

श्रीवन्दनतृतीयाध्ययनम् ।

* अनंतर अध्ययन में सावद्ययोग विरति रूप सामायिक के उपदेष्टा अरिहंतों का उत्कीर्तन किया। यहाँ सामायिक गुणवाले को वंदन करना चाहिए, ऐसा कहते हैं।

अथवा

पूर्व में अर्हद्गुणोत्कीर्तन रूप भक्ति से कर्मक्षय कहा। यहाँ वंदन से साधु भक्ति से कर्मक्षय कहते हैं।

अथवा

सामायिक में चारित्र कहा, चतुर्विंशतिस्तव में अरिहंत की गुणस्तुति दर्शन-ज्ञान रूप कही। इनके वितथसेवन का गुरु को निवेदन करना चाहिए। वह निवेदन वंदन पूर्वक होता है अतः वंदन का निरूपण करते हैं।

* इस अध्ययन के चउअनुयोगद्वार कहना चाहिए। उसमें नामनिष्पन्न निक्षेप में वंदन अध्ययन नाम। इसमें से 'वंदन' शब्द का निरूपण –

'वदि अभिवादनस्तुत्योः' करण अर्थ में ल्युट्, यु का अन् आदेश, इदितो नुम् धातोः से न् आगम (पा. 3-3-117, 7-1-58)
वन्द्यते-स्तूयतेऽनेन प्रशस्तमनोवाक्कायव्यापारजातेन वन्दनम्।

सूत्र. वंदन शब्द के पर्याय वाची –

गा.1103 (पूर्वार्ध) वंदन, चितिकर्म, कृतिकर्म, पूजाकर्म, विनयकर्म
(वंदणचिइकिइकम्मं पूयाकम्मं च विणयकम्मं च)

* चितिकर्म – चिधातु क्ति प्रत्यय
कुशलकर्मणः चयनं चितिः, कारण में कार्य के उपचार से रजोहरणादि उपधि का समूह।

HAPPY THOUGHTS

★ कृतिकर्म = मोक्ष के लिए झुकना वि.चेष्टा

★ कर्म शब्द - अनेक अर्थ - 1. कारक - कर्तुरीप्सितं कर्म।

2. ज्ञानावरणीयादि वाचक।

3. क्रियावाचक - eg. गन्धर्वा रञ्जिताः सर्वे सङ्ग्रामे भीमकर्मणा।

यहाँ क्रिया वाचक अर्थ लेना।

★ पूजाकर्म = पूजा की क्रिया।

विनयकर्म = जिससे कर्म दूर हो।

अव. शिष्य का प्रश्न -

III कब? IV कितनी बार?

गा. 1103 (उत्तरार्ध) 1104 (हारगा) I वंदन किसे करना? II किसके द्वारा किए जाना चाहिए? V कितने अवनत? VI कितने मस्तक झुकाना? VII कितने आवश्यकों से यह वंदन शुद्ध होता है? VIII कितने दोष से रहित करना? IX किसलिए वंदन करना?

★ वंदनकर्म 2प्र. द्रव्य - मिथ्यादृष्टि या अनुपयुक्त सम्यग्दृष्टि को।

भाव - उपयुक्त सम्यग्दृष्टि।

★ चितिकर्म - 2प्र. द्रव्य - तापसादि लिंग का ग्रहण या अनुपयुक्त सम्यग्दृष्टि की रजोहरणादि क्रिया।

भाव - उपयुक्त सम्यग्दृष्टि की रजोहरणादि की क्रिया।

★ कृतिकर्म - 2प्र. द्रव्य - निह्नवादि या अनुपयुक्त सम्यग्दृष्टि।

भाव - उपयुक्त सम्यग्दृष्टि।

पूजाकर्म - विनयकर्म भी इसी प्रकार।

HAPPY THOUGHTS

अव. वंदनादि में द्रव्य-भाव के दृष्टांत –

गा.1105 शीतल, क्षुल्लक, कृष्ण, सेवक, पालक ये 5 दृष्टांत कृतिकर्म में जानना।

वंदन का दृष्टांत ★ शीतल – एक राजा का शीतल नामक पुत्र x दीक्षा ली x उसकी बहन अन्य राजा को दी गई x उसके 4 पुत्र x वह पुत्रों को कथाओं में मामा की कथा कहती है x चारों ने भी दीक्षा ली x बहुश्रुत हुए x गुरु को पूछकर मामा को वंदन करने चले x नगर के बाहर रुके x ~~सोचा~~ एक श्रावक को कहा कि शीतलाचार्य को कहना - आपके भांजे आए हैं किंतु शाम होने से नगर के बाहर रुके हैं x श्रावक के ऐसा कहने पर शीतलाचार्य तुष्ट हुए x चारों को रात में शुभ अध्यवसाय से केवलज्ञान हुआ x सुबह आ. ने सोचा - अभी आएँगे, दिशा में देखने लगे x सोचा - एक मुहूर्त में आएँगे, न आने पर सोचा सूत्रपोरसी कर आएँगे, न आने पर सोचा अर्थपोरसी कर आएँगे x बहुत देर होने पर स्वयं देवकुल गए x वे वीतराग आदर नहीं करते x उन्होंने दांडा रखा x इर्यावही कर पूछा - कहाँ से वंदन करूँ? x भांजे - जहाँ से योग्य लगे x आ. ने सोचा - ये तो निर्लज्ज दुष्ट शिष्य हैं x गुस्से में वंदन किया x भांजे - ये तो द्रव्य से वंदन किया, अब भाव से करो x आ. के कषायकंडकों से षट्स्थानपतित देखते हैं x आ. - तुमने जान लिया कि मैं द्रव्य वंदन करता हूँ x हाँ x कोई अतिशय है? x हाँ x घाद्मस्थिक या केवलिक? x केवलिक x आ. ने रोमांचित होकर कहा - अहो मैंने केवली की आशातना करी x कषायकंडकों से निवृत्त होकर अपूर्वकरण में चढ़े x चौथे भांजे के वंदन पूर्ण होने तक केवलज्ञान हुआ x।

HAPPY THOUGHTS

प्र. चारों भांजे छोटे थे तो वंदन करते हुए आ. को रोका क्यों नहीं? क्योंकि जब तक केवली अप्रगट हो तब तक

वे व्यवहार का भंग नहीं करते, ऐसा जीतकल्प है।
उ. यदि पूर्व में व्यवहार हुआ हो तो व्यवहार का भंग नहीं करते। किंतु यहाँ तो पूर्व में कोई व्यवहार हुआ ही नहीं था।

पहले द्रव्य से फिर भाव से वंदन हुआ।

चितिकर्म का दृष्टांत ★

क्षुल्लक – कालधर्म होते हुए एक आ. ने क्षुल्लक साधु को आ. बनाया × सभी मुनि उनकी आज्ञा में रहते हैं × आ. भी अन्य गीतार्थ के पास पढ़ते हैं × एकदा मोहनीय कर्म से प्रेरित आ. सभी साधु के गोचरी जाने पर पानी का मात्रक लेकर स्थंडिल भूमि के बहाने एक दिशा में चलने लगे (परिणाम पतित होने से) × आगे जाकर एक वनखंड में विश्राम करते हैं × वहाँ खीजड़े के झाड़ के आसपास ओटला (पीठ) था × सब लोग उसकी पूजा करते हैं किंतु अन्य बकुलादि वृक्ष को नहीं पूजते × आ. ने लोगों को पूछा – बकुलादि वृक्ष को क्यों नहीं पूजते? × लोग – हमारे पूर्वज ने इसके पास पीठ बनाकर इसे ही पूजा है × आ. ने सोचा – खीजड़ा निर्गुण होने पर भी चिति रूप पीठ के कारण पूजा जाता है, वैसे ही मैं भी निर्गुण होने पर भी रजोहरणादि चिति से पूजा जाता हूँ तथा ~~बक~~ खीजड़ा पूर्वजों की स्थापना से पूजाता है वैसे ही मैं गुरु द्वारा स्थापने से पूजाता हूँ, गच्छ में अन्य बहुश्रुतादि बहुत हैं किंतु उन्हें न बनाकर मुझे आ. बनाया, मुझमें कहाँ साधुता है? × ऐसे विचार से वे वापस आ गए × इधर साधु भी गोचरी से आकर आ. को ढूँढते हैं किंतु मिलते नहीं हैं × तभी आते हुए देखा × आ. – स्थंडिल में मुझे पेट में शूल हुआ जिससे मैं गिर गया, शूल शांत होने पर उठकर आया × अन्य गीतार्थ के पास

HAPPY THOUGHTS

प्रा. ने आलोचना ली x
परिणाम प्रगटने के पहले द्रव्य चिति, बाद में भाव चिति (रजोहरणादि उपधि)।

कृतिकर्म का दृष्टांत

कृष्ण – द्वारिका x कृष्ण वासुदेव x वीरक बुनकर का नियम था कि कृष्ण के दर्शन कर ही खाना, वह कृष्ण का भक्त था x चौमासे में बहुत हिंसा से कृष्ण महल के बाहर नहीं निकलते x वीरक दर्शन न होने से रोज पुष्पों से पूजा कर (भाव से) वापस जाता है x बरखा नहीं है x दाढ़ी मूछ बढ़ गई x चौमासे के बाद कृष्ण ने पूछा – तू दुर्बल कैसे हुआ ? x द्वारपाल ने पूरी बात कही x कृष्ण ने दया आने से उसे बेरोकटोक महल में प्रवेश की अनुमति दी x
सभी पुत्री के विवाह समय कृष्ण पूछते – रानी बनना है या दासी ? x पुत्री – रानी x कृष्ण – भ. के पास दीक्षा ले x महोत्सव पूर्वक दीक्षा देते x एकरानी ने पुत्री को सिखाया कि तू दासी बनने का कहना x उसने वैसा किया x कृष्ण ने सोचा – कोई उपाय करना पड़ेगा जिससे अन्य पुत्री ऐसा जवाब न दे x
वीरक को पूछा – तूने कोई पराक्रम किया है ? x वीरक – ① बदरी के वृक्ष पर गिरगिट को पत्थर से मारा ② बैलगाड़ी के रास्ते में बहते पानी को उल्टे पैर से रोकने पर पानी दूसरी तरफ मुड़ गया ③ Liquid में माखी गिरने पर हाथ से बाहर निकाली जिससे वह आवाज करती हुई उड़ गई x कृष्ण दूसरे दिन राजसभा में 16000 राजा के बीच बोले – इस वीरक के पराक्रम सुनो ① बदरी वन में लाल सिरवाले नाग को पृथ्वी शस्त्र से मारा ② चक्र से खुदी हुई और गंदे पानी वाली गंगा को उल्टे पैर से रोक दिया ③ आवाज करती हुई कत्थशी पुर में रहने वाली सेना को उल्टे हाथ से

HAPPY THOUGHTS

भगा दिया, इसके साथ मेरी पुत्री का विवाह करता हूँ x वीरक मानता नहीं है x कृष्ण ने भवें चढ़ाई x वह मान गया x विवाह के बाद उसे शय्या में बिठाकर स्वयं सभी काम करता है x कृष्ण ने कहा - यदि सब काम पुत्री से न कराया तो तू बचेगा नहीं x वीरक ने घर जाकर पत्नी को कहा - liquid बना x पत्नी गुस्से में बोली - हे बुनकर! तू स्वयं बनाना नहीं जानता ? x वीरक ने चाबुक से मारा x रोती हुई कृष्ण के पास आई x कृष्ण - मैं क्या करूँ, तूने ही दासीत्व माँगा x पुत्री - मुझे स्वामिनी बनना है x कृष्ण - यदि वीरक अनुमति दे तो x वीरक ने अनुमति दी x उसने दीक्षा ली x x

भ. पधारे x कृष्ण ने सभी साधुओं को द्वादशावर्त वंदन किए x अन्य राजा थकने से रुक गए x वीरक ने पूरे वंदन किए x कृष्ण को बहुत पसीना हुआ x भ. को कहा - 360 युद्ध में भी इतना नहीं थका x भ. - तूने क्षायिक सम्यक्त्व और तीर्थंकरनामकर्म बांधा x x

मृत्यु के समय जब जराकुमार से बींधे गए तब निंदा-गर्हा से उद्वेलना करते हुए ७वीं नारक के आयुष्य को ३री नारक का किया x उस समय यदि आयु अधिक होती तो पहली नारक का कर देते x x

अन्य मत - वंदन करते हुए ही आयु भी ७वीं से ३री नारक का किया x

वासुदेव को भावकृतिकर्म और वीरक को द्रव्यकृतिकर्म।

पूजाकर्म का दृष्टांत ☆

सेवक - एक राजा के दो सेवक x दोनों के गाँव पास में x एकदा सीमा के लिए वे झगड़े x राजकुल जाते हुए रास्ते में साधु को देखा x एक ने सोचा - साधु को देखने से सिद्धि निश्चित है, प्रदक्षिणा-वंदना कर गया x दूसरे ने उसके जैसा ही किया x

case में पहला जीता x

पहले को भावपूजा, दूसरे को द्रव्य पूजा।

HAPPY THOUGHTS

विनयकर्म का दृष्टांत

* पालक – द्वारिका x कृष्ण x पालक-शांबादि पुत्र x नेमिनाथ भ. पधारे x कृष्ण – कल जो भ. को प्रथम वंदन करेगा, वह जो मांगेगा, उसे वह दूंगा x शांब ने शय्या से उठकर वंदन किया x पालक ने राज्यलोभ से अश्वरत्न पर जाकर वंदन किया x वह अभव्यजीव वंदन करता है किंतु हृदय से आक्रोश करता है x कृष्ण ने भ. को पूछा x भ.:- द्रव्य से पालक ने, भाव से शांब ने x शांब को दिया।

अव. I. वंदन किसे करना' द्वार में जिसे वंदन नहीं करना चाहिए, उन्हें कहते हैं – (देखें द्वारगा. 1103-4 pg 43)

गा. 1106 प्रसंयत ऐसे माता-पिता, गुरु, सेनापति, ~~धर्मपाठ~~ प्रशास्ता, राजा, देव को (मुनि) वंदन न करें।

* गुरु – पितामहादि।
* प्रशास्ता = प्रकर्षेण शास्ता, धर्मपाठकादि

अव. वंदन जिसे करना चाहिए –

गा. 1107 मेधावी संयत- सुसमाहित, पंचसमित, त्रिगुप्त, असंयम के दुगंछक ऐसे श्रमण को वंदन करें।

* श्रमण – नामादि 4 प्र. का होता है। उसमें 3 का व्यवच्छेद और भाव श्रमण के ग्रहण के लिए विशेषण दिए हैं –
* संयत ⇒ सम्-एकीभावेन यतः, क्रिया में प्रयत्नवान।

* ऐसा संयत ~~भी~~ लब्धि वि. प्राप्त करने के लिए दर्शन-ज्ञान-चारित्र से असंपूर्ण भी हो सकता है अतः सुसमाहित = दर्शनादि में सम्यक् समाहित।

HAPPY THOUGHTS

★ सुसमाहित पन को दिखाते हैं :-
5 समिति से समित, 3 गुप्ति से गुप्त, असंयम की गर्हा करने वाला। इस विशेषण से उनकी दृढ़धर्मता कही।

★ प्र. जिसे वंदन करना चाहिए उन्हें पहले क्यों नहीं कहा?
उ. यह शास्त्र सभी पर्षदा के लिए (हित के लिए, पर्षदे हितं = पार्षदं) है। शिष्य 3 प्र. — उद्घटितज्ञ, मध्यमबुद्धि, प्रपंचितज्ञ। प्रपंचितज्ञ को ऐसा न हो कि ऐसे श्रमण को वंदन करना और माता वि. के लिए विधि भी नहीं, निषेध भी नहीं। अतः उन्हें भी कहा।

प्र. तो जिसे न करना चाहिए, उन्हें पहले क्यों कहा?
उ. हित में अप्रवृत्ति से अहित में प्रवृत्ति संसार का बड़ा कारण है, यह बताने के लिए।

गा.1108 5 को कृतिकर्म न करना, इसमें माला-मरुक का दृष्टांत है।
(प्रतिद्वार गा.) वैडूर्यरत्न-ज्ञाननय-दर्शननय-निपतवास के दोष कहना।

★ पार्श्वस्थ-अवसन्न-कुशील-संसक्त-यथाच्छंद को कृतिकर्म न करना, ऐसा अध्याहार पहले की गाथा 1107 से पता चलता है। क्योंकि पार्श्वस्थादि यथोक्त श्रमणगुण से रहित होते हैं।

HAPPY THOUGHTS

★ तथा जो श्रमण पार्श्वस्थादि के साथ संसर्ग करते हैं, उन्हें भी वंदन न करना।

प्र. यह अर्थ कहाँ से लाए?
उ: माता - मरुक के दृष्टांत से। वहाँ 'असुइट्ठाणे पडिया' वि. कहेंगे।

★ संसर्ग से उत्पन्न दोष के निराकरण के लिए वैडूर्य दृष्टांत। 'सुचिरंपि अच्छमाणो' वि. कहेंगे।

★ ज्ञाननय वाले ज्ञानी को ही वंदन करना चाहिए, ऐसा कहते हैं।
★ दर्शननय वाले दर्शनी को ही " " " " कहेंगे।
★ संपूर्ण-चारित्र धर्म के पालन में असमर्थ नित्यवासादि की प्रशंसा करते हैं, सेगमस्थविर के उदाहरण से।
अतः इन सबके दोष कहना।

अब 5 पार्श्वस्थादि का स्वरूप -
गा. (प्रक्षिप्त) पार्श्वस्थ अवसन्न कुशील संसक्त यथाच्छंद, ये 5 जिनमत में अवंदनीय हैं।

★ पार्श्वस्थ
दर्शनादीनां पार्श्वे तिष्ठति - दर्शनादि के पास-अलग रहे।
मिथ्यात्वादिपार्श्वेषु तिष्ठति - मिथ्यात्वादि बंध हेतु रूप पार्श्व में रहे।

टीप्पणक → पार्श्वस्थ २प्र. सर्वतः, देशतः।
सर्वतः पार्श्वस्थ = जो ज्ञान-दर्शन-चारित्र से अलग रहे। इसमें निशीथचूर्णि का पाठ -

HAPPY THOUGHTS

जो सोता रहे, सूत्रपोरसी या अर्थपोरसी न करे, (ज्ञान से पार्श्वस्थत्व) दर्शनाचार में न वर्ते (दर्शन से पार्श्वस्थत्व), चारित्र में न वर्ते या अतिचारों का वर्जन न करे (चारित्र पार्श्वस्थ पन)।

देशत: पार्श्वस्थ = जो शय्यातर पिंड, अभ्याहृत पिंड, नित्यपिंड, अग्रपिंड रोज कारण बिना वापरे। सकारण वापरने वाला विशुद्ध-चारित्री ही होता है।
स्निग्धाहारादि की आसक्ति से गोचरी जाए। कारण बिना स्थापना कुलों में जाए। कौतुकादि से संखड़ी में जाए। शरीर काँच में देखे। माता वि. संबंध जोड़े अथवा दानप्राप्ति से पहले या बाद में दाता के गुण संस्तव करे।

<u>शय्यातर पिंड</u> → शय्यया भवार्णवं तरति इति शय्यातर:, उसका पिंड।
शय्यातर के 8 द्वार -

1. शय्यातर कौन → साधु को दिए हुए उपाश्रय का स्वामी या उस स्वामी द्वारा प्रमाणता पूर्वक निर्दिष्ट किया हुआ।
2. कब शय्यातर होता है → शय्यातर गृह में रात रहकर वहीं प्रतिक्रमण (सुबह) करे तो वह शय्यातर। शय्या में पूरी रात जागकर सुबह का प्रतिक्रमण अन्यत्र करे तो जहाँ प्रतिक्रमण करे, उस जगह का स्वामी शय्यातर। शय्या में सोकर सुबह का प्रतिक्रमण अन्यत्र करे तो दोनों जगह का स्वामी शय्यातर। वसतिसंकीर्णतादि कारण से साधु अनेक उपाश्रयों में रहे तो जहाँ आचार्य रहे उस वसति का मालिक शय्यातर।
3. शय्यातर पिंड कतिविध → 12 प्र. = अशनादि 4, पादप्रोंछन वस्त्र-पात्र-कंबल 4, सुई-छुर-कर्णशोधन-नखरदनी 4, तृण-डगल-क्षार-शय्या-संथारा-पीठ-फलक-सोपाधिक शिष्य शय्यातर के पिंड नहीं होते।

HAPPY
THOUGHTS

4. अशय्यातर कब होता है → अहोरात्र के बाद या स्थान से जिस समय निकले, दूसरे दिन उसवेला के बाद शय्यातर अशय्यातर होता है।

5. किसका संबंधी शय्यातर वर्जनीय → साधुगुणरहित लिंगमात्रधारी का शय्यातर वर्जनीय।

6. शय्यातर पिंड में दोष → ⓐ प्रथम 22 तीर्थंकर और महाविदेह के तीर्थंकरों ने आधाकर्म कभी वापरा किंतु शय्यातर पिंड नहीं वापरा अतः तीर्थंकर से प्रतिकृष्ट होने से वर्जनीय पिंड।

ⓑ आज्ञा - अज्ञात उञ्छ की आज्ञा का लोप।

ⓒ उद्गम शुद्ध नहीं होता - पास में होने से पुनः पुनः वहीं जाने से उद्गम दोष लगते हैं।

ⓓ अविमुक्ति - स्वाध्यायादि से खुश हुआ शय्यातर स्निग्धाहार दे तो गृद्धि का अभाव नहीं होगा।

ⓔ अलाघव - शय्यातर, उसके पुत्र, उसके भाई वि. से आहार और उपधि ग्रहण करने पर शरीर और उपधि का लाघव नहीं होगा।

ⓕ दुर्लभशय्या - शय्यातर के वैमनस्यादि कारण से शय्या दुर्लभ होगी

ⓖ व्यवच्छेद - शय्या का व्यवच्छेद भी हो सकता है।

7. कब शय्यातर का पिंड लेना → ⓐ सागार या अनागार ग्लानत्व में

ⓑ निमंत्रण - शय्यातर निर्बंध करे तो एकबार ग्रहण कर पुनः प्रसंग का निवारण करना।

ⓒ दुग्ध दुर्लभ - दूध वि. दुर्लभ होने पर।

ⓓ ऊणोदरी

ⓔ प्रदोष - द्वेषी राजा द्वारा सर्वत्र गोचरी का निवारण करने पर उसके घर में भी गुप्त रीति से ले।

ⓕ भय - अन्यत्र चोर वि. का भय होने पर।

HAPPY THOUGHTS

8. कहाँ शय्यातर होता है - स्वस्थान में रहता हुआ शय्यातर होता है, देशांतर गया हुआ न भी हो। किंतु भद्रक और प्रांत दोष से उसका भी पिंड नहीं लेना।

ⓐ भद्रक दोष - मेरे घर में रहने पर ये कुछ नहीं लेते किंतु अन्य जगह लेते हैं अतः अन्य जगह अनेषणीय बनवाकर दे।

ⓑ प्रांत दोष - 'मेरे घर से नहीं लेते और भाई वि. घर से लेते हैं तो क्या मैं पराया हूँ' ऐसा सोचकर वसति का उच्छेदादि करे। अतः शय्यातर के भाई वि. संबंधी का पिंड भी नहीं लेना।

(विस्तार के लिए प्रकल्प का तृतीय उद्देशक देखना)

अभ्याहृत पिंड - स्व पर ग्राम से साधु के लिए लाया गया।

नित्यपिंड - 'मेरे घर आना, रोज मैं इतना दूँगा' ऐसा निमंत्रण देने वाले के यहाँ रोज ग्रहण करने वालों को नित्य पिंड।

अग्रपिंड - उसी क्षण उतरी हुई, अव्यापारित थाली से लेना।

हरिभद्रीय वृत्ति

★ अवसन्न

सामाचारी के सेवन में अवसन्न (पीड़ित) जैसा।

~~अवसीदति सामा~~

टीप्पणक → 'अवसीदति सामाचार्यां' इति अवसन्नः। 2 प्र. सर्वतः, देशतः।

सर्वतः अवसन्न = एक काष्ठ से बने संस्तारक प्राप्त न होने पर बहुत काष्ठखंडों को दोरी वि. से बांधकर वर्षा में संथारा करना। बहु पार पक्षादि में बंधन खोलकर पडिलेहन करना चाहिए, ऐसी आज्ञा है। जो पडिलेहन नहीं करता वह बद्धपीठफलक

HAPPY THOUGHTS

कहा जाता है अथवा पुनः पुनः सोने के लिए जो संथारा पाथरा हुआ ही रखे, वह बहुपीठफलक। स्थापना का भोजन लेने वाला सर्वावसन्न।

देशतः अवसन्न = प्रतिक्रमणादि आवश्यक न करे या हीनाधिक करे। वाचनादि स्वाध्याय न करे या अकाल में करे वि.। पडिलेहन न करे या दोषवाला करे। शुभ ध्यान 'किं मे कडं किंच मे किच्चसेसं...' पूर्व-अपर रात्रि में न करे या अशुभ ध्यान करे। आलस से, सुख का लिप्सु भिक्षा न करे या अनुपयुक्त करे। मांडली में न वापरे या संयोजनादि दोष लगाए। निसीहि - आवस्सही न कहे। गमन में इर्यावही न करे या दोषदुष्ट करे। बैठने-सोने में संडासे-भूमि न प्रमार्जे या सम्यक् न प्रमार्जे। गुरु द्वारा प्रेरणा करने पर सामने असंबद्ध बोले। स्खलित में मिच्छामि दुक्कडं न दे। वैयावच्च न करे। गुरु की उपधि को पैर लगने वि. में वंदन न करे। आदान-निक्षेप में प्रत्युपेक्षणा-प्रमार्जना न करे। इत्यादि वितथाचरण देशपार्श्वस्थत्व के कारण है।

हरिभद्रीय वृत्ति

★ <u>कुशील</u>

कुत्सितं शीलं अस्य

टीप्पणक →

कुशील 3 प्र. ज्ञान, दर्शन, चारित्र विषयक।

ज्ञानकुशील → 8 प्र. के ज्ञानाचार की विराधना करनेवाला।

इसी प्रकार दर्शन कुशील।

चरणकुशील → जो ~~आजी~~ उपजीवन के लिए निम्न वस्तुओं का उपयोग करे -

1. कौतुक = सौभाग्य या पुत्रादि के लिए स्त्री वि. का चौराहे वि. पर स्नानादि कराना।

HAPPY THOUGHTS

2. भूतिकर्म = बुखार वि. उतारने के लिए भस्म मंत्रित कर देना।
3. प्रश्नाप्रश्न = अर्थि द्वारा पूछा हुआ देवज्ञ स्वप्नादि में जो देवी विद्यादि देवी को पूछे वह प्रश्न। स्वप्न में विद्यादेवी द्वारा कहे हुए शुभाशुभ को कान में घंटीवजाने(!) द्वारा कहने वाली देवी विशेष आख्यायिका। मंत्र से बुलाई हुई आख्यायिका शुभाशुभ देवज्ञ को कहती है। यह देवी द्वारा कहा हुआ अन्य को कहना प्रश्नाप्रश्न।
4. निमित्त = भूत-भविष्य-वर्तमान में लाभादि भावों का कहना।
5. आजीव = 7 प्र. जाति कुल शिल्प कर्म तप गण सूत्र।
'आप और हम एक ही जाति-कुल-शिल्प-कर्म या गण के हैं' ऐसी वचन रचना आहारादि में गृद्ध होकर करना। तप या सूत्राभ्यास आहारादि के लिए प्रयत्न करना।
6. कल्ककुरुका = माया से दूसरों को ठगना।
7. विद्या स्त्री या साधना सहित।
मंत्र पुरुष या साधन रहित।
आदि शब्द से चूर्ण-योग-औषधादि का प्रयोग।
आहार के उपलक्षण से शरीर-उपधि आदि भी लेना।

हरिभद्रीय वृत्ति

★ संसक्त
पार्श्वस्थादिकं तपस्विनं वाऽऽसाद्य सन्निहितदोषगुणः =
पार्श्वस्थादि के संसर्ग से उनके दोष वाला हो, तपस्वी के संसर्ग से उनके गुण वाला हो।

टीप्पणक → संसक्त = मूलगुण और उत्तरगुण विषयक सभी दोष और गुण जिसमें प्राप्त हो। जैसे गाय-भैंस वि. के खाने के भाजन में बचा हुआ या न छोड़ा हुआ

HAPPY THOUGHTS

सभी मिलता है, भोजन-धान्य-कपासादि सभी डाला हुआ मिलता है; वैसे।

जैसे राजविदूषक राजा का क्रीड़ापात्र बहुरूपी होता है अथवा नट बहु रूप करता है अथवा एलक (ऊरणक) बहुत रंग वाला होता है, हल्दी से पीला होता है पुन: धोकर गुलिका से काला होता है पुन: धोकर हिंगुल से लाल होता है; वैसे ये भी जिस प्रकार के शुद्ध या अशुद्ध से मिलता है, उसी प्रकार का स्वयं को दिखाता है, इसलिए संसक्त कहलाता है।

संसक्त २ प्र. - संक्लिष्ट और असंक्लिष्ट। ५ आस्रव (हिंसा-अनृत-स्तैन्य-अब्रह्म-परिग्रह) के सेवन में रत, ऋद्धि-रस-साता गारव में प्रतिबद्ध संक्लिष्ट संसक्त होता है। संक्लिष्ट संसक्त २ प्र. - (a) स्त्री संक्लिष्ट - स्त्री का प्रतिसेवी, (b) गृहिसंक्लिष्ट - गृहस्थ के द्विपद-चतुष्पद-धन-धान्यादि की रक्षा में प्रवृत्त। ये अतिशय ~~असंक्लिष्ट~~ अविशुद्ध होने से संक्लिष्ट कहलाता है। असंक्लिष्ट - पार्श्वस्थादि और संविग्नों से मिलकर वैसा ही हो जाता है।

हरिभद्रीय वृत्ति

* यथाच्छन्द

आगमनिरपेक्ष यथेच्छया प्रवर्तने वाला।

टीप्पणक → उत्सूत्र आचरण करते और उत्सूत्र प्ररूपणा करते यथाच्छंद।

उत्सूत्र = तीर्थकर-गणधर द्वारा अनुपदिष्ट

स्वच्छंदता से सोचना।

दूसरे को पीड़ा करने वाला, किसी द्वारा अल्प भी अपराध

HAPPY THOUGHTS

करने पर सतत बार-बार पीड़ा करता रहे। स्वयं के सुख
के लिए मति से अध्ययनादि का स्वच्छंद अर्थ कर
सुख को चखने वाले तथा विकार में आसक्त।

→ यहाँ कहीं अग्रभोजिवि. अल्प दोषों से, कहीं स्त्रीसेवादि महादोषों
से अवन्द्यत्व कहा है। तत्त्व खबर नहीं पड़ता अतः कुछ
विशेष ज्ञान के लिए कल्प के भाष्य और चूर्णि के कुछ
पाठ दिए हैं। (संक्षेप में-)

ज्ञानादि आलंबण रहित और पाप करके भी निर्दय-निःशंक
वर्तने वाले को वंदन नहीं करना।

नीचे के संयमस्थान में रहे, मूलगुण की विपरीत आसेवन
करने वाले भी आत्यंतिक कारण में अशठता से वर्तते
गीतार्थ आचार्य या गण पुलाक की तरह वंदनीय हैं।
पुलाक की लब्धि चक्री की सेना का स्तंभन या नाश कर
सकती है, ऐसा कर भी वह आलोचित प्रतिक्रांत शुद्ध और
महानिर्जरा वाला है।

कोई कार्य होने पर लाभ के उपाय में कुशल मुनि द्वारा
संयमगुण से भ्रष्ट को भी वंदन करना चाहिए। जैसे- किसी
आ. ने अगीतार्थ क्षुल्लकों को गीतार्थ न होने पर पास की
पल्ली में क्षेत्रप्रत्युपेक्षण के लिए भेजा × वहाँ भ्रष्टव्रत वाला एक
वाचक (उपाध्याय) राजकुल से प्रमाण किया हुआ रहता है × क्षेत्र प्रत्युपेक्षणा
कर क्षुल्लकों ने पूछा- वे कहाँ रहते हैं? × लोक- जंगल में × वे
वहाँ गए × बकरी का रक्षण करते देख 'इसे नहीं देखना
चाहिए' ऐसा सोचकर अगीतार्थ होने से धीरे-
धीरे पीछे हटने लगे × उन्हें देखकर कुपित वाचक ने पल्लीपति

HAPPY
THOUGHTS

को कहकर उन्हें जेल में डाला x उन्हें ढूँढने गुरु आए x वाचक व्रतभ्रष्ट होने पर भी वंदन कर 'ये शिष्य अज्ञ हैं' इत्यादि कह छुड़ाया।

सकल प्रवचन का सार – ~~प प किंचि~~ बहुवित्थरमुस्सग्गं बहुयर-मववायवित्थरं नाउं। जह जह संजमवुड्ढी तह जयसु निज्जरा जहय॥

विस्तार के लिए निशीथ का १०वां उद्देशक देखना।

हरिभद्रीय वृत्ति अव.- पार्श्वस्थादि को वंदन करते हुए को दोष–

गा.1109 पार्श्वस्थादि को वंदन करते हुए को ~~कि~~कीर्त्ति नहीं होती, निर्जरा भी नहीं। ऐसे ही कायक्लेश और कर्मबंध करता है।

* तीर्थंकराज्ञा की विराधना से व निर्गुण होने से निर्जरा और कीर्ति नहीं होती।

* च शब्द से –

1. आज्ञाभंग- भ. द्वारा प्रतिकुष्ट को वंदन करने में।
2. अनवस्था - उसे देखकर अन्य भी वंदन करते हैं।
3. मिथ्यात्व - उन्हें वंदन किए जाते देख अन्य को मिथ्यात्व।
4. विराधना - कायक्लेश या देवता वि. से आत्म विराधना। वंदन से उनके असंयम की अनुमोदना से संयम विराधना।

अव. पार्श्वस्थादि को वंदन करने वाले के दोष कहे। अब यदि कोई गुणाधिक पार्श्वस्थादि को वंदन करे, पार्श्वस्थादि उन्हें मना न करे तो पार्श्वस्थादि को होने वाले अपाय–

HAPPY THOUGHTS

गा.1110 ब्रह्मचर्य से भ्रष्ट जो ब्रह्मचारियों को पैर में पड़ाते हैं, वे हाथ-पैर से वक्र शरीरी होते हैं। और उन्हें बोधि दुर्लभ होता है।

★ ब्रह्मचर्य शब्द मैथुन विरति वाचक, सामान्य से संयम वाचक।

★ वे नारकत्वादि विपाक को प्राप्त करते हैं। यदि कभी मुश्किल से मनुष्यत्व मिल गया तो भी हाथ-पैर से वक्र होते हैं।

गा.1111 जो चरित्र से भ्रष्ट गुणवान् और प्राज्ञानुसारी सुसाधु को वंदन कराते हैं, वे स्वयं का बहुत अच्छी तरह नाश करते हैं।

अव. ऐसे वंदन करने वाले और वंदन कराने वाले, दोनों को दोष होने से पार्श्वस्थादि को वंदन न करना। जो गुणवान् भी उनका संसर्ग करते हैं, उन्हें वंदन करने के दोष-

गा.1112 जैसे अशुचिस्थान में पड़ी चंपक माला गले में नहीं पहनी जाती, वैसे पार्श्वस्थादि के स्थान में रहने वाले भी अपूज्य हैं।

★ चंपक माला = चंपा के फूल की माला।

★ पार्श्वस्थादि के स्थान - वसति, स्थंडिल भूमि आदि।

अन्य आ. तो शय्यातरपिंड वापरनो वि. शिथिलाचार को पार्श्वस्थादि का स्थान कहते हैं किंतु यह नहीं घटता क्योंकि जो शिथिलाचार में वर्तता है, वह स्वयं ही पार्श्वस्थादि हो जाएगा, संसर्गवाला नहीं होगा। तथा ऐसा अर्थ लेने पर चंपकमाला उदाहरण का उपनय भी नहीं घटेगा। यहाँ 'अशुचिस्थान में पड़ी माला' लेना है, जबकि 'अशुचिस्थान का सेवन करने वाले' ऐसा अर्थ नहीं होगा।

HAPPY THOUGHTS

★ एक चंपकप्रिय कुमार माला को गले में डालकर अश्व पर जा रहा था x अश्व द्वारा उछालने पर माला उसके गले से उकरड़े में पड़ी x वह लेने गया किंतु उकरड़ा देखकर न ली x चंपा बिना उसे धृति नहीं होती है किंतु स्थानदोष से छोड़ी।
चंपा ~~बिना~~ की जगह साधु, उकरड़े की जगह पार्श्वस्थादि।

अव. माला का दृष्टांत कहा (देखें प्रतिहार गा.1108 pg 49)। अब मरुक दृष्टांत –

गा.1113 गर्हितकुल में रहता 14 विद्या का पारगामी भी गर्हित होता है। ऐसे ही कुशीलों के मध्य में रहते सुविहित साधु भी गर्हित होते हैं।

★ 14 विद्या = 6 अंग + 4 वेद + मीमांसा + न्याय + पुराण + धर्मशास्त्र।
6 अंग = शिक्षा कल्प व्याकरण छंद ज्योतिष निरुक्ति।

★ एक ब्राह्मण के 5 पुत्र 14 विद्या के पारगामी x उनमें से एक दासी के साथ जुड़ा x वह मद्य पीती है x यह ~~भी~~ नहीं पीता x दासी- यदि तू दारु पीएगा तो हमारा संबंध अच्छा होगा x बहुत बार कहने से वह पीने लगा x पहले गुप्त रीति से पीता है, फिर प्रगट भी पीने लगा x धीरे-धीरे मांस भी खाने लगा x निंद्य लोगों के साथ ही घूमने लगा x पिता ने घर से बाहर निकाला x एकदा वह पूरा खत्म हो गया x दूसरा भाई स्नेह से उसे खाने-पीने का देता है x उसे भी पिता ने बाहर निकाला x तीसरा ~~भाई~~ भाई कुटिर में प्रवेश करे बिना बाहर से ही खाना देता है, उसे भी पिता ने निकाला x चौथा गुप्त रीति से दिलवाता है, उसे भी निकाला x 5वां भाई गंध भी नहीं इच्छता अतः पिता ने

HAPPY
THOUGHTS

न्यायालय जाकर पूरी संपत्ति का मालिक उसे बनाया।
निंद्य लोग - पार्श्वस्थादि, ब्राह्मणपिता - आचार्य, पुत्र-साधु)

जो जारिसेण मित्तिं करेइ अचिरेण तारिसो होइ।
कुसुमेहिं सह वसंता तिल्लावि तग्गंधिया होंति॥

प्रव. मरूक दृष्टांत कहा (देखें प्रतिहार गा. 1108 Pg 49) । ~~वैडूर्य पद~~
पार्श्वस्थादि के संसर्ग से साधु भी अवंद्य कहे। संसर्ग मात्र से
होने वाले दोषों में "वैडूर्य" दृष्टांत -

गा. 1114 (पूर्वपक्ष) काचमणि के साथ बहुत लंबे समय रहने वाला
वैडूर्य रत्न भी स्वयं के विमलता गुण से काच के धर्म को
प्राप्त नहीं करता। (ऐसे ही साधु भी पार्श्वस्थादि के संसर्ग से
स्वयं के शीलगुण से पार्श्वस्थत्वादि नहीं प्राप्त करता)

गा. 1115 (उत्तरपक्ष) लोक में 2 द्रव्य भाव्य - अभाव्य। वैडूर्य मणि अन्यद्रव्यों
से अभाव्य है।

★ भाव्य = प्रतियोगी द्वारा स्वगुणों से स्वयं जैसा ही बनाया जाए,
वह।

गा. 1116 जीव संसार में अनादि-निधन है और संसार के भाव से भावित
है। अतः वह जल्दी ही मिलन के दोष के प्रभाव से भावित
होता है।

गा. 1117 आम्र और नींबू, दोनों की जड़ एक जगह आई। आम्र संसर्ग से
नष्ट हुआ निंबत्व को प्राप्त करता है।

★ अर्थात् आम का पेड़ भी नींबू जैसे तिक्त
फल देता है।

HAPPY THOUGHTS

स्व. पूर्वपक्ष – यह भी प्रतिपक्ष सहित है –

गा.1118 यदि संसर्गी प्रमाण है तो नल स्तंभ नामकवृक्ष लंबे समय तक इक्षु (गन्ने) के खेत में रहा हुआ मधुर क्यों नहीं होता ?

* उत्तरपक्ष – इसका जवाब भाव्य-अभाव्य द्रव्य में आ चुका है। पार्श्वस्थादि से केवली भाव नहीं है, सरागी भाव है।

स्व. उनके साथ आलाप मात्र करने में दोष –

गा.1119 सौ वें भाग से भी कम भाग लवणागरादि में रहने पर पूरी प्रतिमा लवण रूप होती है इसलिए कुशीलसंसर्ग का वर्जन करना चाहिए।

* सौ वें भाग से भी कम भाग लवणादि के संसर्ग में रहने से धीरे-धीरे पूरी प्रतिमा लवण रूप खारी हो जाती है।

* आदि शब्द से भाण्डखादिकारस = एक ऐसा रस है जिसके संबंध से कोई भी वस्तु लोहादि पानी जैसा हो जाता है। (टिप्पणक)

गा.1120 जैसे मीठा पानी सागर के पानी को प्राप्त हुआ मिलन के दोष से खारा होता है।

गा.1121 ऐसे ही अशीलवान् से मिला हुआ शीलवान् भी गुणहानि को प्राप्त करता है।

* ऐहिक अपायों को भी प्राप्त करता है।

गा.1122 अतः सुविहितों को क्षण के लिए भी अनायतन सेवन करना योग्य नहीं है क्योंकि समुद्र को प्राप्त पानी तुरंत खारा होता है।

HAPPY THOUGHTS

गा. 1123 (पूर्वपक्ष) सुविहित या दुर्विहित मैं नहीं जानता, मैं तो छद्मस्थ हूँ। त्रिकरण शुद्ध भाव से लिंग को पूजता हूँ।

* क्योंकि सुविहित या दुर्विहित पन मन की शुद्धि या अशुद्धि से होता है द्रव्य और परभाव तो सर्वज्ञ के विषय है।

गा. 1124 (उत्तरपक्ष) यदि तुझे लिंग प्रमाण है तो सभी निह्नवों को भी वंदन कर। इन्हें वंदन न करने पर लिंग तुझे भी अप्रमाण ही है।

* मिथ्यादृष्टि होने से निह्नव मात्र द्रव्यलिंग धारी है।

अब. ऐसे लिंग की वंदन में अप्रमाणता जानकर अनभिनिवेश वाला शिष्य सामाचारी की जिज्ञासा से पूछता है –

गा. 1125 यदि लिंग अप्रमाण है तो निश्चय से कौन सा भाव है, वह जान नहीं सकते। तो साधु द्वारा श्रमण लिंग देखकर क्या किया जाना चाहिए?

गा. 1126 (गुरु) अदृष्टपूर्व साधु को देखकर अभ्युत्थान तो करना चाहिए। दृष्टपूर्व साधु में जिसको जो योग्य हो, वह करना।

* जिस साधु को पहले न देखा हो, ऐसे साधु के आने पर अभ्युत्थान दंड ग्रहणादि करना चाहिए क्योंकि कभी कोई अतिशयसंपन्न आचार्यादि वह विद्या देने ही आए हो और अभ्युत्थानादि न करे तो अविनीत जानकर विद्या न दे। जैसे- प्रशिष्य-सागरसूरि के पास कालक सूरि गए थे।

HAPPY THOUGHTS

★ जिन्हें पूर्व में देखा हो ऐसे साधु २प्र. के होते हैं → उद्यत-विहारी और शीतलविहारी। इनमें उद्यतविहारी को यथायोग्य वंदनादि करना चाहिए। शीतलविहारी को उत्सर्ग से अभ्युत्थानवंदनादि नहीं करना चाहिए।

अव. शीतलविहारी को कारण से करने की विधि—

गा. 1127 जिसने संयमधुरा छोड़ दी है, प्रकट में अतिचारसेवन करने वाला, चरण-करण से भ्रष्ट ऐसे लिंगमात्रधारी साधु को जो करना चाहिए, वह मैं कहूँगा।

★ कारण से करने की विधि। कारण बिना तो निषेध ही किया है।

★ प्रगट में अतिचार सेवी - प्रवचन उपघात से निरपेक्ष।

★ संयम धुरा छोड़ने वाला कभी प्रकट अतिचार सेवी नहीं होता, अत: इस विशेषण का ग्रहण किया है।
प्रकट अतिचारसेवी चरण-करण से भ्रष्ट ही होता है। अत: स्वरूप विशेषण।

गा. 1128 वाचा, नमस्कार, हाथ जोड़ना, शीष झुकाना, साता पूछना, रहना, छोभवंदन या वंदन।

★ स्थंडिलभूमि वि. में दिखने पर वचन से अभिलाप करना 'कैसे हो'।

★ यदि वह कोई विशिष्टतर पुरुष हो या कोई विशिष्ट कार्य हो तो वचन से नमस्कार भी करना।

★ ऐसे अधिक विशिष्ट पुरुष या कार्य होने पर पूर्व-पूर्व के उपचार के साथ आगे का विनय जोड़ते जाना।

HAPPY THOUGHTS

★ अभिलाप, वाचिक नमस्कार, हाथ जोड़ना, शीश नमाना, साता पूछना, रहना (कुछ काल तक) यह बाहर देखे हुए की विधि है। यदि कारण विशेष हो तो उनके उपाश्रय भी जाना चाहिए।

थोभ वंदन अतिथि से करना।

★ वंदन - परिशुद्ध विधि पूर्वक वंदन।

अव. ये अभिलापादि सामान्य से सभी को नहीं करना किंतु -

गा. 1129 पर्याय - पर्षदा - पुरुष - क्षेत्र - काल - आगम को जानकर कारण उत्पन्न होने पर जिसको जो योग्य हो, वह उसे करे।

भा. 205 पर्याय यानि ब्रह्मचर्य, पर्षदा विनीत हो, कुलादि के कार्य इनके अधीन हो, प्रसिद्ध हो, गुण - आगम - श्रुत जिनके पास हो, उन्हें योग्य करे।

★ पर्याय = ब्रह्मचर्य जिसने बहुत समय पाला हो।

★ पर्षदा = साधु समुदाय जिसके लिए विनीत हो, प्रतिबद्ध हो।

★ पुरुष = विशिष्ट हो। कुल - गण - संघादि के कार्य उसके आधीन हो।

★ क्षेत्र = उस क्षेत्र में वह प्रसिद्ध हो, उसके बल से वहाँ रह सके।

★ गुण यानि रात को जागना वि. कास्य हार का अर्थ।

आगम - सूत्र - अर्थ - उभय

श्रुत - सूत्र

ये 3 जिसके पास हो।

HAPPY
THOUGHTS

गा. 1130 ये यथायोग्य न करते हुए को अर्हत् देशित मार्ग में प्रवचन भक्ति नहीं होती। अभक्ति आदि दोष होते हैं।

* आदि शब्द से स्वार्थभ्रंश - बंधनादि।

सव.(पूर्वपक्ष) पर्यायादि ढूँढने से क्या! कर्म निर्जरा के लिए सर्व प्रकार से भावशुद्धि पूर्वक जिनप्रणीत लिंग को नमन ही युक्त है क्योंकि लिंग में रहे गुण का विचार निष्फल है। नमस्कार करने वाले को उसमें रहे गुण से निर्जरा नहीं होती किंतु स्वयं की आत्मशुद्धि से होती है। इसी बात को कहते हैं-

गा.1131 (पूर्वपक्ष) प्रतिमाओं में तीर्थंकर के गुण नहीं है, ऐसा निःसंशय जानता हुआ जो तीर्थंकर मानकर प्रणाम करता है, वह विपुल निर्जरा करता है।

गा.1132 ऐसे ही गुण रहित होने पर भी जिनप्रज्ञप्त लिंग को आत्मशुद्धि से नमन करते को विपुल निर्जरा होती है।

गा.1133 (उत्तरपक्ष) तीर्थंकर में तीर्थंकर के गुण होते हैं। यह प्रतिमा उन तीर्थंकर की है, ऐसा चित्त प्रणाम करने वाले को होता है। प्रतिमा में सावद्य क्रिया भी नहीं है। पार्श्वस्थादि में सावद्य क्रिया निश्चित होती ही है अतः अनुमति का दोष लगता है।

* अथवा अरिहंत के गुण के आरोप से इष्ट देव की प्रतिमा को प्रणाम से नमस्कर्ता की हलन-चलनादि क्रिया सावद्य नहीं होती किंतु पार्श्वस्थादि की पूजा करने पर पार्श्वस्थादि अशुभ क्रियायुक्त होने से नमस्कर्ता को निश्चित ही अनुमति का दोष लगता है।

गा.1134 (पूर्वपक्ष) जैसे प्रतिमा में सावद्य क्रिया नहीं है, वैसे निरवद्य भी नहीं है। निरवद्य क्रिया के अभाव में फल नहीं होता। यदि फल होगा तो अहेतुक होगा।

HAPPY THOUGHTS

* निरवद्य क्रिया के अभाव में फल नहीं होता।
* यदि क्रिया के अभाव में भी फल मानो तो वह फल अहेतुक यानि निष्कारण होगा।

निष्कारण फल घटता नहीं है क्योंकि (1) फल प्रणम्यवस्तु में रही क्रिया के कारण ~~...~~ वाला है। (2) यदि निष्कारण फल मानो तो आकस्मिक कर्म संभव होने से मोक्षादि का अभाव होगा।

गा.1135 (उत्तरपक्ष) प्रतिमा में उभयाभाव अनुमत है। तो भी फल मन की विशुद्धि से होता है। उस मन विशुद्धि का कारण प्रतिमा होती है।

* प्रतिमा में सावद्य-निरवद्य दोनों क्रिया का अभाव है। तोभी मन की विशुद्धि से नमस्कर्ता को फल मिलता है।
* स्वयं की मनविशुद्धि ही नमस्कर्ता के फल का कारण है, नमस्करणीय वस्तु में रही क्रिया नहीं क्योंकि अन्य आत्मा की क्रिया से अन्य आत्मा को फल नहीं मिलता।

*प्र. यदि ऐसा है तो प्रतिमा का क्या काम?

उ. मन विशुद्धि का निमित्त कारण प्रतिमा है क्योंकि प्रतिमा से मन विशुद्धि की संभूति (होना) दिखती है।

~~गा.1136 (पूर्वपक्ष)~~

अव. (पूर्वपक्ष) ऐसे तो लिंग भी प्रतिमा की तरह मनविशुद्धि का कारण होता ही है? इसका उत्तर देते हैं –

गा.1136 (उत्तरपक्ष) यद्यपि प्रतिमा की तरह लिंग मुनिगुण में संकल्प का कारण है। किंतु लिंग में उभय है, प्रतिमा में उभय नहीं है।

HAPPY THOUGHTS

★ जैसे प्रतिमा मनविशुद्धि का निमित्त कारण है, वैसे द्रव्य लिंग भी मुनिगुण (व्रतादि) में संकल्प (अध्यवसाय, परिणाम) का कारण है।
तो भी लिंग का प्रतिमा के साथ वैधर्म्य है।
क्योंकि लिंग में सावद्य-निरवद्य दोनों कर्म है और प्रतिमा में दोनों नहीं है।

★ उसमें निरवद्यकर्म से युक्त जो मुनिगुण का संकल्प है, वही सम्यक् संकल्प है, वही पुण्य फल वाला है।
जो सावद्यशुभकर्म से युक्त संकल्प है, वह विपर्यास संकल्प है, वह क्लेश फल वाला है।

★ प्रतिमा में दोनों नहीं है क्योंकि वह चेष्टा रहित है। इसलिये उनमें जिनगुण विषयक क्लेशफल वाले विपर्यास संकल्प का अभाव है।

★ प्र. यदि ऐसा है तो प्रतिमा में निरवद्य कर्म से रहित होने के कारण पुण्यफल वाले सम्यक् संकल्प का भी अभाव होगा?
उ. इसीलिए प्रतिमा में तीर्थंकर के गुण का आरोप किया जाता है। अतः अभाव नहीं होता।

गा. 1137 जिनों में गुण सदृश्य हैं। प्रतिमाओं को देखकर उन्हें (गुण) को मन में विचारता। पार्श्वस्थादि को निर्गुण जानता हुआ किस गुण को मन में कर नमेगा?

HAPPY THOUGHTS

★ पु. अन्य साधु के गुण उनमें अध्यारोपित कर वंदन करे तो?
उ. वे सावद्य कर्म युक्त होने से अध्यारोप के विषय के लक्षण से रहित है। अविषय में अध्यारोप कर नमस्कार करने वाले को दोष (नुकसान) देखे जाते हैं।

गा. 1138 जैसे विडंबकलिंग को जानते हुए नमन करने वाले को दोष है वैसे निद्धन्धस जानकर वंदन करने में निश्चित दोष है।

★ विडंबकलिंग = भांड वि. द्वारा किया हुआ।
दोष = प्रवचनहीलनादि।

★ निद्धन्धस = प्रवचन उपघात से निरपेक्ष पार्श्वस्थादि।
दोष = आज्ञाविराधनादि।

अव. इस प्रकार कारण बिना लिंग मात्र को सावद्य क्रिया वाला जानकर वंदन नहीं करते, यह सिद्ध हुआ। भावलिंग भी द्रव्यलिंग रहित हो तो वंदन नहीं किया जाता। भावलिंग युक्त द्रव्यलिंग को वंदन किया जाता है। क्योंकि वही वंदन अभिलषित अर्थ का साधक है। इसी में रूपये का दृष्टांत -

गा. 1139 रूप्य - टंक विषम - आहताक्षर वाला रूपया छेक नहीं है। दोनों के समायोग में रूपक छेकत्व को प्राप्त करता है।

★ छेक = सांव्यावहारिक।

★ यहाँ चतुर्भंगी - रूप - शुद्ध। अशुद्ध (सिक्के का धातु)
टंक - विषमाहताक्षर। समाहताक्षर
(छाप)

HAPPY
THOUGHTS

रूप टंक

1. अशुद्ध विषम...
2. अशुद्ध सम
3. शुद्ध विषम
4. शुद्ध सम

★ यहाँ रूप (धातु) समान भावलिंग।
टंक (छाप) " द्रव्य "।

	भावलिंग	द्रव्यलिंग	eg.
1.	अशुद्ध	अशुद्ध	चरकादि
2.	अशुद्ध	शुद्ध	पार्श्वस्थादि
3.	शुद्ध	अशुद्ध	अंतर्मुहूर्त तक प्रत्येकबुद्ध, (जब लिंग ग्रहण न किया हो)
4.	शुद्ध	शुद्ध	शील युक्त साधु

शील युक्त साधु eg. गच्छ में रहे और गच्छ से बाहर जिनकल्पिकादि।

★ जैसे प्रथम 3 भांगे में रहा सिक्का असांव्यवहारिक है, अर्थी द्वारा ग्रहण नहीं किया जाता, वैसे प्रथम 3 भांगे में रहे साधु को भी परलोकार्थी द्वारा वंदन नहीं किए जाना चाहिए।

स्व. दृष्टांत में दार्ष्टान्तिक योजना —

गा.।।५० रूप्य प्रत्येक बुद्ध, टंक लिंगधारी श्रमण। द्रव्य और भाव के समायोग में छेक श्रमण।

HAPPY THOUGHTS

★ रूप्य जैसा प्रत्येकबुद्ध, ३रा भांगा।

★ टंक " लिंगधारी, २रा भांगा।

अव. वैडूर्यद्वार पूर्ण (देखें प्रतिद्वार गा. 1108, Pg 49) (Pg 61 पर अव.)।

अब ज्ञान द्वार - कोई ज्ञान को ही मोक्ष का प्रधान कारण मानते हैं। उनके आगम -

जं अण्णाणी कम्मं खवेइ बहुयाहिं वासकोडीहिं।
तं णाणी तिहिगुत्तो खवेइ ऊसासमित्तेणं॥

सुई जहा ससुत्ता ण णासई कयवरंमि पडियावि।
जीवो तहा ससुत्तो ण णस्सइ गओऽवि संसारे॥

णाणं गिण्हइ णाणं गुणेइ णाणेण कुणइ किच्चाइं।
भवसंसारसमुद्दं णाणी णाणे ठिओ तरइ॥

अतः ज्ञानी को ही वंदन करना चाहिए।

प्र. उपर्युक्त गाथा में ही द्रव्य-भाव के समायोग में वंदन करने को कहा। उसमें भाव तो चारित्र ही है तो आप मात्र ज्ञान क्यों कहते हो? उ.-

गा. 1151 (पूर्वपक्ष) चारित्र भाव है, यह ठीक है। वह भी ज्ञानसहित ही निष्ठा तक पहुँचता है। ज्ञान भाव नहीं है, ऐसा नहीं है। अतः ज्ञानी को हम वंदन करते हैं।

★ भाव शब्द भावलिंग के अर्थ में है।

★ भावलिंग चारित्र है। वह भी ज्ञान युक्त होने पर ही निष्ठित होता है। क्योंकि 'यह सेवनीय है' ऐसा ज्ञान से ही पता चलता है।

★ ज्ञान भाव नहीं है, ऐसा नहीं है क्योंकि ज्ञान भी भाव लिंग के अंतर्गत ही है।

HAPPY THOUGHTS

गा.।।५२ बाह्य चारित्र से युक्त अज्ञानी को चारित्राभाव ही कहा है। इसलिए मुझे बाह्यकरण प्रमाण नहीं है, चारित्र भी प्रमाण नहीं है। मुझे ज्ञान प्रमाण है क्योंकि तीर्थ ज्ञान में स्थित है।

★ तीर्थ आगम रूप है।

अत. तथा दर्शन भी भाव स्वरूप है 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' (तत्त्वार्थ।-।)। वह २प्र.- अधिगम, नैसर्गिक। यह भी ज्ञान के अधीन ही है -

गा.।।५३ अधिगमसम्यक्त्व भी जीव को सद्भाव जानने के बाद ही होता है। जातिस्मरणद्वारा निसर्ग से उत्पन्न दृष्टि भी निरागम नहीं है।

★ सद्भाव = सत् पदार्थ जीवाजीवादि। उनका भाव।

★ निसर्ग से उत्पन्न दृष्टि भी आगमरहित नहीं है क्योंकि स्वयंभूरमण के मत्स्यादि को जिनप्रतिमादि के आकार वाले मत्स्य के दर्शन से जाति स्मरण होकर भूतार्थ पर्यालोचन के परिणाम रूप नैसर्गिक सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। वहाँ भूतार्थपर्यालोचन ज्ञान है अतः यह भी ज्ञान के आधीन है।

★ अतः ज्ञानी को ही वंदन करना चाहिए, यह सिद्ध हुआ।

अत. इस प्रकार ज्ञानवादी द्वारा पूर्वपक्ष का स्थापन करने के बाद गुरु - (उत्तरपक्ष)

HAPPY THOUGHTS

गा.।।५५ ज्ञान स्वविषय में नियत है। ज्ञानमात्र से कार्य की निष्पत्ति नहीं होती। सचेष्ट और अचेष्ट मार्गज्ञ दृष्टांत है।

* ज्ञान का स्वविषय प्रकाशन ही है।

* कोई पाटलिपुत्रादि के मार्ग को जानने वाला और जाने की इच्छा वाला गमन क्रिया में उद्यत होने पर ही इष्टदेश की प्राप्ति रूप कार्य को ~~इच्छता~~ साधता है, चेष्टा रहित बहुत काल में भी नहीं साधता।
ऐसे ही ज्ञानी शिवमार्ग को अविपरीत जानता हुआ भी संयम में उद्यत ही मोक्ष प्राप्त करता है, ज्ञान के प्रभाव से ही प्राप्त करता है। अतः संयम रहित ज्ञान से कोई कार्य नहीं होता।

गा.।।५६ आलोय के साथ नृत्य में कुशल नटी भी योग को नहीं व्यापारित करने पर लोगों को तुष्ट नहीं करती और निंदा-खिंसा पाती है।

* निंदा= प्रत्यक्ष, जो हीलना सामने ही हो।
खिंसा= परोक्ष।

गा.।।५८ ऐसे जो लिंगज्ञान सहित कायिक योग व्यापार नहीं करता, वह मोक्षसुख नहीं पाता और स्वपक्ष से निंदा को पाता है।

* उपनय → ~~न~~ नर्तकी= साधु, आलोय= द्रव्यलिंग, नृत्यज्ञान= ज्ञान, योगव्यापार= चरण, जनपरितोष= संघ परितोष, दानलाभ= सिद्धिसुखलाभ।

HAPPY THOUGHTS

अत. चरणरहित ज्ञान निरर्थक है, इस अर्थ के साधक बहुत दृष्टांत हैं अतः एक दृष्टांत और कहते हैं-

गा.1147 तैरना जानता हुआ भी जो नदी में कायिक जोग को नहीं जोड़ता है, वह नदी के प्रवाह द्वारा वहन कराता है। ऐसे ही चरणहीन ज्ञानी भी।

* चरण हीन ज्ञानी भी संसार नदी में प्रमाद रूप पानी के प्रवाह में द्वारा वहन किया जाता है।

अव. ऐसे मात्र ज्ञान का पक्ष निराकृत होने पर पूर्वपक्ष-

गा.1148 (पूर्वपक्ष) गुणाधिक को वंदन करना चाहिए। छद्मस्थ तो गुण-अगुण को नहीं जानता किसी के गुण हीन को भी वंदन करे या गुणाधिक को भी वंदन कराए।

* दोनों में दोष है -एक में अगुण की अनुमति से, एक में विनय त्याग से। अतः मौन रहना ही श्रेयस्कर है।

अव. गुणाधिकत्व जानने के व्यवहार नय से कारण-

गा.1149 (उत्तरपक्ष) आलय, विहार, स्थान, गमन, भाषा, विनय से 'यह सुविहित है' ऐसा जानना शक्य है।

* वसति - सुप्रमार्जितादि अथवा स्त्री-पशु-पंडक रहित।
विहार - मासकल्पादि।
स्थान - अविरुद्ध देश में कायोत्सर्ग करना (जाने-आने के रास्ते में न करना वि.)
गमन - युग जितनी पृथ्वी देखते पूर्वक धीरे-धीरे चलना।
भाषा - विचारकर बोलना।

HAPPY THOUGHTS

विनय- आचार्यादि का विनय करना।
ये सब प्रायः असुविहित में नहीं होता है।

गा. 1150 (पूर्वपक्ष) आलय विहार स्थान चंक्रमण भाषा विनय से सुविहित जानना शक्य नहीं है।

★ क्योंकि असंयत भी लब्धि वि. के लिए संयत की तरह चेष्टा करते हैं। और संयत भी कारण से असंयत की तरह चेष्टा करते हैं।

★ उदायिराजा को मारने वाला विनयंधर और मथुरा के कोट्टइल्ल आदि से व्यभिचार होता है।
मथुरा में पूर्वकाल में कूर लोग साधु वेष में भिक्षा लेने निकलते थे।

गा. 1151 भरत ~~क~~ साभ्यंतर भरत और सबाह्य प्रसन्नचंद्र उदाहरण हैं। उनका बाह्य करण दोषोत्पत्ति और गुणकर नहीं हुआ।

★ अभ्यंतर सहित भरत उदाहरण हैं क्योंकि बाह्यकरण से रहित और विभूषित ऐसे आदर्शगृह में प्रविष्ट भरत को विशिष्ट भावना से केवलज्ञान हुआ।

★ बाह्यकरण सहित प्रसन्नचंद्र उदाहरण हैं क्योंकि उत्कृष्ट बाह्यकरण वाले और अंतःकरण रहित उन्हें 7वीं नरक प्रायोग्य कर्मबंध हुआ।

★ इस प्रकार भरत का अशुभ बाह्यकरण दोषोत्पत्ति का कारण नहीं बना और प्रसन्नचंद्र का उत्कृष्ट बाह्य करण गुणकर नहीं बना।

HAPPY THOUGHTS

★ अतः आन्तरकरण ही प्रधान है। वह आलय आदि से जानना शक्य नहीं है। अतः वंदन की जगह मौन

ही श्रेयस्कर है, ऐसा सिद्ध हुआ।

अत. ऐसे तीर्थ के अंग स्वरूप व्यवहार नय से निरपेक्ष शिष्य को जानकर गुरु व्यवहार नय के खंडन से अन्यों के पारलौकिक अपाय बताने के लिए कहते हैं-

गा. 1152 पार्श्वस्थ प्रत्येकबुद्ध करण रूप कादाचित्क भाव कहने से जिनवरों द्वारा प्ररूपित चारित्र का 5 स्थानों से नाश करते हैं।

* पूर्वभव में जिन्होंने अभ्यंतर-बाह्य उभय करण का अभ्यास किया है, ऐसे प्रत्येकबुद्ध का प्रान्तर करण ही फलसाधक होने पर मंदमति वाले जिनवर कथित स्वयं के और अन्यों के चारित्र का नाश करते हैं।

पार्श्वस्थ भरतादि को केवलोत्पत्ति वि. कादाचित्क भाव के कथन से परंपरा से करण बनने वाले ऐसे प्राणातिपातादि 5 स्थानों से चारित्र का नाश करते हैं।

गा. 1153 उन्मार्गदेशना से जिनवर के चारित्र का नाश करते हैं, ऐसे व्यापन्न दर्शन वाले को देखना भी नहीं कल्पता।

* व्यापन्न दर्शन = नष्ट हो गया है सम्यग्दर्शन जिनका।
* देखना भी नहीं कल्पता तो ज्ञानादि से प्रतिलाभित करने की क्या बात!

अब. ज्ञानद्वार पूर्ण (देखें द्वार गा. 1108 पृ 49) (पृ 71 पर अब.1)।

अब दर्शन द्वार। दर्शन नय वाला कहता है-

गा. 1154 (पूर्वपक्ष) जैसे ज्ञान बिना चरण नहीं है, वैसे अदर्शनी को ज्ञान नहीं है। दर्शनभाव नहीं है, ऐसा नहीं है। अतः दर्शनी को हम वंदन करते हैं।

HAPPY THOUGHTS

★ ज्ञान सम्यग्दृष्टि को ही होता है।
★ दर्शन भाव है अर्थात् भावलिंग के अंतर्गत है।
★ दर्शन ज्ञान में उपकारक है।

प्रव. पू. सम्यक्त्व-ज्ञान एकसाथ प्राप्त होने से उपकार्य-उपकारक भाव की अनुपपत्ति है।
उ. यह असत् है क्योंकि-

गा. 1155 युगपद् उत्पन्न हुआ भी सम्यक्त्व ज्ञान को निर्मल करता है।
जैसे कातक और अंजन पानी और दृष्टि को निर्मल करते हैं।
★ कातक = कतक वृक्ष का फल (फिटकरी)
अंजन = सौवीरादि

प्रव. दार्ष्टान्तिक-
गा. 1156 जैसे-जैसे पानी शुद्ध होता है, वैसे-वैसे द्रष्टा (पानी में रहे) रूप देखता है। वैसे ही जैसे-जैसे तत्त्वरुचि होती है वैसे-वैसे तत्त्व का आगम होता है।
★ इस प्रकार सम्यक्त्व ज्ञान का उपकारक है, यह सिद्ध हुआ।

अव. पू. निश्चय से उपकार्य-उपकारक भाव कार्य-कारण भाव ही है और वह कार्य-कारण भाव युगपद् होने वाली वस्तुओं में असंभव है। उ.-
गा. 1157 युगपद् जन्म में भी दीप-प्रकाश का कार्य-कारण विभाग है। वैसे साथ में उत्पन्न भी सम्यक्त्व ज्ञान का हेतु है।

HAPPY THOUGHTS

★ अतः दर्शन सकल गुणों का मूल होने से दर्शनी को ही वंदन करना चाहिए।

* आत्मा को भी वहीं यत्न करना चाहिए क्योंकि वह सभी गुणों का मूल है। कहा गया है –

द्वारं मूलं प्रतिष्ठानमाधारो भाजनं निधिः।
धर्महेतोर्द्विषट्कस्य सम्यग्दर्शनमिष्यते॥

धर्म के हेतु रूप द्विषट्क (व्रत षट्क - काय षट्क) का द्वार, मूल, प्रतिष्ठान, आधार, भाजन, निधि सम्यग्दर्शन है।

अब. ऐसा पूर्वपक्ष होने पर गुरु कहते हैं – (उत्तरपक्ष)

गा. (प्रक्षिप्त) यद्यपि ज्ञान का हेतु है किंतु तो भी सम्यक्त्व स्वविषय में नियत है। अतः वज्ञान पक्ष की तरह फल संपत्ति नहीं होती।

गा. (प्रक्षिप्त) जैसे देशांतर जाने के लिए तीक्ष्ण रुचि वाला भी नय से रहित उस देश को प्राप्त नहीं करता, नययुक्त ही प्राप्त करता है।

गा. (प्रक्षिप्त) ऐसे ही ज्ञान-चरण रहित सम्यग्दृष्टि भी मोक्ष देश नहीं पाता, ज्ञानादि से संयुक्त ही प्राप्त करता है।

* सम्यक्त्व और ज्ञान विशिष्ट क्षयोपशम के कार्य होने से तात्त्विक रीति से तो सम्यक्त्व ज्ञान का कारण ही नहीं होता। तोभी अभ्युपगमवाद से मान लें कि सम्यक्त्व ज्ञान का कारण है तथापि वह स्वविषय में नियत है।

* सम्यक्त्व का स्वविषय तत्त्वों में रुचि ही है। अतः सम्यक्त्व से फल संप्राप्ति यानि मोक्षसुख प्राप्ति घटती नहीं है। क्योंकि वह स्वविषय में नियत है, असहाय है। जैसे ज्ञान अकेला असहाय था, वैसे।

HAPPY THOUGHTS

* तीक्ष्णरुचि = तीव्रश्रद्धा वाला पुरुष।
नय = ज्ञान-क्रिया रूप।

* अत: ज्ञानादि तीनों प्रधान हैं। त्रिक से युक्त को ही वंदन करना चाहिए। आत्मा को त्रिक का ही सेवन करना चाहिए।

अव. ऐसे तत्त्व को कहने पर भी जो अधर्मी हैं, वे जिन असदालंबनों को बताते हैं, वे कहते हैं –

गा. 1158 धर्म से निवृत्त मति वाले, परलोक से पराङ्मुख, विषय में गृद्ध, चरण-करण में अशक्त श्रेणिक राजा का व्यपदेश करते हैं।

गा. 1159 श्रेणिक वैसा बहुश्रुत नहीं था, प्रज्ञप्ति धर भी नहीं था, वाचक भी नहीं था। वह आगामी काल में तीर्थंकर होगा। यह देखकर बुद्धि से दर्शन ही श्रेष्ठ लगता है।

* बहुश्रुत = महाकल्पादि श्रुतधर।
प्रज्ञप्ति धर = भगवती वेत्ता।
वाचक = पूर्वधर।

अव. (पूर्वपक्ष) शक्य उपाय में ही प्रेक्षावान् की प्रवृत्ति योग्य है, अशक्य में नहीं। जैसे सिरशूल मिटाने के लिए तक्षक नाग के फण से मणि लाना। ऐसे मणि लाने रूप अशक्य चारित्र में नहीं करना चाहिए। तत्त्व से मोक्ष का उपाय होने पर भी चारित्र अशक्य है क्योंकि सूक्ष्म अपराधों से विराधना होने से और प्रयास रूप है। छद्मस्थ को अवश्य उसका भ्रंश होगा ही अत: –

HAPPY
THOUGHTS

गा. 1160 चारित्र से भ्रष्ट को दर्शन अच्छी तरह ग्रहण करना चाहिए। चरण रहित सिद्ध होते हैं; दर्शन रहित सिद्ध नहीं होते।

प्रश्न. उत्तरपक्ष –

गा. 1161 दशारसिंह, श्रेणिक, पेढालपुत्र – सत्यकि की अनुत्तर दर्शनसंपत्ति थी। चरित्र बिना उससे वे अधोगति गए।

* अनुत्तर दर्शन = क्षायिक सम्यक्त्व।
* दशारसिंह = नेमिनाथ भ. के cousin भाई, कृष्ण।

गा. 1162 ज्ञान-दर्शन धारण करने वालों द्वारा सभी गति अतिरिक्त हैं। अतः चारित्र रहित ज्ञान से प्रमाद मत कर।

गा. 1163 अचारित्र को सम्यक्त्व भजना से होता है, नियम से नहीं। जो चारित्र युक्त है उसे नियम से सम्यक्त्व है।

गा. 1164 नरक-तिर्यंच-एकेंद्रिय[ii] से जैसे जीव सिद्ध होता है, वैसे उद्वर्तना को नहीं जानते जिनवचन से बाह्य (ज्ञान-दर्शन नय वाले) (ज्ञान-दर्शन की) भावना से (मोक्ष इच्छते हैं)।

* अर्थात् ज्ञान-दर्शन होने पर भी नरक-तिर्यंच आदि से जीव ~~अ~~ मनुष्य भव में चारित्रपरिणाम को प्राप्त कर ही सिद्ध होता है। ऐसा वे (ज्ञान-दर्शन नय वाले) नहीं जानते।

गा. 1165 चरण-करण से हीन अतिरिप्त सम्यग्दृष्टि भी सिद्ध नहीं होता। जो सिद्धि का मूल है, मूढ़ जीव उसे ही नष्ट करता है।

* सम्यक्त्व मोक्ष का कारण है किंतु ~~ज्ञान~~ दर्शन में आग्रह वाला मूढ़ जीव दर्शन के बाद से इस

HAPPY THOUGHTS

सम्यक्त्व को ही नष्ट करता है। या चारित्र के असेवन से मूढ़ जीव मोक्ष के कारण सम्यक्त्व का नाश करता है।

टीप्पणक (i) एकेंद्रिय ज्ञान-दर्शन रहित भी मनुष्यभव को प्राप्त कर चारित्र प्राप्त कर सिद्ध होते हैं अतः चारित्र बिना ज्ञान-दर्शन असहाय है, यह सिद्ध हुआ।

हरिभद्रीय

वृत्ति अव. यह दर्शन पक्ष वि. किसे होते हैं:-

गा.1166 दर्शनपक्ष चारित्र भ्रष्ट और मंदधर्म वाले श्रावक में, दर्शन चारित्रपक्ष परलोककांक्षी श्रमण में होता है।

* चारित्र भ्रष्ट - अप्रत्याख्यान कषाय के उदय से जिसने दीक्षा छोड़ दी हो।

अव. (पूर्वपक्ष) यदि ऐसे बहुत युक्तियों से चारित्र प्रधान है तो ज्ञान-दर्शन से क्या काम? (उत्तर) चारित्र ज्ञान-दर्शन बिना असंभव है-

गा.1167 दर्शन-ज्ञान से चरण की परंपर प्रसिद्धि होती है। जैसे अन्न-पान की परंपर प्रसिद्धि होती है, वैसे।

* प्रसिद्धि = स्वरूप सत्ता।

दर्शन से ज्ञान और ज्ञान से चारित्र, ऐसे दर्शन-ज्ञान से चारित्र की परंपरा द्वारा सत्ता होती है।

* जैसे लोक में अन्न का अर्थी थाली- ईंधन वि. भी ग्रहण करता है और पान का अर्थी द्राक्षादि का ग्रहण करता है। उनसे परंपरा द्वारा अन्न-पान की प्रसिद्धि होती है।

* अतः त्रिक होना चाहिए।

HAPPY THOUGHTS

अव.(पूर्वपक्ष) यदि ऐसा है तो ज्ञानादि का तुल्यबल्य होने पर भी आप अध्यान में पक्षपात कर चारित्र की प्रशंसा क्यों करते हो? (उत्तर)-

गा.1168 क्योंकि दर्शन-ज्ञान अकेले संपूर्ण फल नहीं देते, चारित्र से युक्त देते हैं अतः ~~इन्हें~~ चारित्र विशिष्ट किया जा रहा है।

अव.(पूर्वपक्ष) चारित्र को विशिष्ट करो किंतु-

गा.1169 (पूर्वपक्ष) जैसे तप-श्रुत में स्वशक्ति से उद्यम करते हुए को गुण होते हैं, वैसे यथाशक्ति संयम करते को गुण कैसे नहीं होते?

* ~~सूक्ष्मता से नहीं तो शक्य अंश में उद्यम करते साधु को गुण होना चाहिए, ऐसा भावार्थ है-(टीप्पणक)~~

* जैसे तप-श्रुत में यथाशक्ति उद्यम करने वाले को गुण होते हैं, वैसे संयम में यथाशक्ति " " " " गुण क्यों नहीं होते? होना ही चाहिए किंतु आप तो संपूर्ण संयम अनुष्ठान रहित को विराधक कहते हो।

टीप्पणक → यहाँ भावार्थ यह है - साधु यथाशक्ति तप करता है, कोई नवकारसी, कोई पोरसी ... यावत् 6 मास। ऐसे ही श्रुत भी कोई अष्ट प्रवचन माता, कोई अधिक ... यावत् 14 पूर्व पढ़ता है। जैसे श्रुत-तप में यथाशक्ति वर्तते हैं वैसे संयम में भी जितना प्राणातिपात रोक सके उतना रोके, जितना मृषावाद रोक सके, उतना रोके, इस प्रकार पाँचों व्रतों में जानना। ऐसा आप नहीं मानते क्योंकि छोटी-सी संयम विराधना में भी आप चारित्र की मलिनता

HAPPY THOUGHTS

और प्रायश्चित्त मानते हो किंतु तप-श्रुत में मलिनता या प्रायश्चित्त नहीं मानते।

हरिभद्रीय वृत्ति गा.।।70 (उत्तरपक्ष) तप-श्रुत में वीर्य को नहीं छुपाता चारित्र की विराधना नहीं करता। यदि संयम में भी वीर्य न छुपाए तो संयम का खंडन नहीं होगा।

टिप्पणक → भावार्थ- तप-श्रुत में भी शक्ति छुपाना नहीं चाहिए, वैसे संयम में भी यदि शक्ति नहीं छुपाता है तो साधु विराधक नहीं है। आगम में ग्लानादि अवस्था में यतना से करते हुए और अशठचित्त वाले साधु को भ. ने सावद्य क्रिया की भी अनुज्ञा दी है।

हरिभद्रीय वृत्ति गा.।।71 संयमयोगों में जो वीर्य होने पर भी उत्साहित नहीं है, बाह्यकरण में आलसी ऐसे व कैसे शुद्ध चारित्र वाले होंगे?

अव. (पूर्वपक्ष) जो कारण होने पर बाह्य करण में आलसी हैं, उन्हें क्या? (उत्तर)-

गा.।।72 मैं ऐसा मानता हूँ कि जो किसी आलंबन (कारण) से संयम में प्रमाद करते हैं, वहाँ कारण प्रमाण नहीं है। भूतार्थ गवेषण करना चाहिए।

★ कारण को प्रमाण नहीं मानना, वहाँ भूतार्थ यानि तत्त्व से अर्थ का गवेषण करना चाहिए कि वह पुष्ट कारण है या अपुष्ट? यदि अपुष्ट है तो वे अशुद्ध-चारित्री, यदि पुष्ट है तो शुद्ध-चारित्री।

HAPPY THOUGHTS

अत: (पूर्वपक्ष) आलंबन-कारण से कौन-सा विशेष उत्पन्न होता है, जिस विशेष विशुद्ध चारित्र वाले होते हैं?
(उत्तर) - गुरु दृष्टांत देते हैं -

गा. 1173 आलंबन सहित गिरता जीव दुर्गम स्थान में भी स्वयं को धारण करता है। वैसे यदि अशठभाव पूर्वक आलंबन प्रतिसेवा करे भी धारण करती है।

★ आलंबन = प्रपततां साधारणस्थानं (गिरते जीवों का साधारण स्थान)

2प्र. द्रव्य, भाव। द्रव्यालंबन 2प्र. अपुष्ट - दुर्बल पास वि. की दोरी
पुष्ट - बलवान् वेलड़ी वि.।

भावालंबन 2प्र. - अपुष्ट - ज्ञानादि का अनुपकारक
पुष्ट - " " उपकारक।

★ मैं ज्ञानादि की अत्यवच्छित्ति करूँगा, पढ़ूंगा, तप-उपधान में प्रयत्न करूँगा, गण की सार-संभाल करूँगा, ऐसा आलंबन सहित विपरीत सेवन करने वाला (विगई वि. वापरना) मोक्ष को प्राप्त करता है।

गा. 1174 आलंबन रहित स्खलना वाला दुःखे से निकल सके ऐसे खड्डे में गिरता है। ऐसे निष्कारण प्रतिसेवी अगाध संसार में गिरता है।

अत: दर्शन द्वार पूर्ण (देखें द्वार गा. 1108 Pg 49) (Pg 76 पर अत:)।
अब नियतावास के दोष कहने का अवसर है। जैसे चारित्र रहित असहाय-ज्ञान-दर्शन पक्ष को मानते हैं वैसे नियतावास को भी स्वीकारते हैं, इस संबंध

HAPPY THOUGHTS

से यह द्वार आया।

गा.।।175 जो जहाँ भग्न हुए, अन्य स्थान को प्राप्त नहीं करते, अन्यत्र जाने में असमर्थ 'यह प्रधान है' ऐसी घोषणा करते हैं।

* जो शीतलविहारी साधु जब अनित्यवासादि में भग्न यानि खेद पामते हैं और अन्य कोई स्थान को प्राप्त नहीं करते, तथा अन्यत्र ~~न~~ जाने में समर्थ नहीं होते, वे 'इस काल में नित्यवास ही प्रधान है' ऐसी घोषणा करते हैं।

* इसमें सार्थ का दृष्टांत है - कोई सार्थ अल्प पानी और छाया वाले मार्ग में निकला। इनमें कुछ पुरुष थके हुए कहीं-कहीं पर आने वाली छाया और जैसे-तैसे पानी में आसक्त होकर बैठ जाते हैं। अन्य पुरुषों को बुलाते हैं- यहाँ आओ, यही प्रधान है। सार्थ में कुछ पुरुष सुनते हैं, कुछ नहीं सुनते। जो सुनते हैं, वे मूख-प्यासादि दुःखों के भागी हुए। जो नहीं सुनते, वे पानी और शीतल छाया के भागी हुए।

जैसे वे पुरुष दुःखी हुए वैसे पार्श्वस्थादि। जैसे नहीं सुनने वाले निकल गए वे साधु।

गा.।।176 (प्रतिद्वार गा.) नित्यवास, चैत्यभक्ति, आर्यिकात्याग और विगई में प्रतिबंध को वे प्रेरित करने पर निर्दोष कहते हैं।

* कोई उद्यतविहारी इन्हें प्रेरणा करे तो वे इन्हें निर्दोष कहते हैं।

HAPPY THOUGHTS

अव. नित्यावास में निर्दोष कैसे कहते हैं-

गा.1177 जब भी ग्राम-आकर-नगर-पट्टन में घूमते वे थक जाते हैं तब कोई नित्यावासी संगमस्थविर का व्यपदेश करते हैं।

गा.1178 संगमस्थविराचार्य बहुत तपस्वी और गीतार्थ गुण-दोष देखकर नित्यावास में प्रवृत्त हुए।

★ कोल्लयेर नगर x संगम स्थविर नामक आचार्य x दुकाल आने पर साधुओं को अन्यत्र भेजा x वे जंघाबल क्षीण होने से नगर के 9 भाग कर उसमें विचरते हैं x नगर का अधिष्ठायक देव उनसे आकृष्ट हुआ x उनका दत्त नामक शिष्य बहुत काल बाद खबर लेने आया x वह उनके उपाश्रय में नित्यावासी मानकर नहीं रहा x भिक्षा वेला में गोचरी न मिलने पर क्लेश करता है कि ये मेरे गुरु वृद्ध हैं, श्रावक के घर नहीं बताते x आ. उसे घर बताने गए x एक सेठ के घर बालक में रोदनी देवी (रुलाने वाली) ने प्रवेश किया, वह 6 मास से रो रहा था x आ. ने चुटकी बजाकर कहा- मत रो x वाणव्यंतरी ने उसे छोड़ दिया x तुष्ट होकर घरवालों ने यथेच्छ द्रव्य वोराए x शिष्य को उपाश्रय भेजा x आ बहुत देर तक घूमकर अंत-प्रांत भोजन लाए x शाम को प्रतिक्रमण में आ.- आलोचना कर x शिष्य- आपके साथ घूमा था x आ.- तूने धात्री दोष वाला पिंड वापरा है x दत्त ने सोचा- मेरे छोटे दोष को देखते हैं, स्वय के बड़े दोष को नहीं देखते x देव ने उसे समझाने रात को घोर अंधकार और बारिश विकुर्वी x दत्त डरा x आ.- मेरे पास आ जा x दत्त- अंधारा है x आ. ने थूंक लगाकर उंगली बताई x वह प्रज्वलित हुई x (दत्त ने सोचा- ये तो अग्निकाय भी रखते हैं x

HAPPY THOUGHTS

देव ने उसे ठपका दिया x) वह समझकर आलोचना करता है x आ. उसे ९ भाग कहते हैं x
इस प्रकार यह पुष्टालंबन है।

गा. 1179 दुकाल में शिष्यगमन, अप्रतिबंध (आसक्तिरहितता) और वृद्धत्व को नहीं किंतु नित्यवासी एक क्षेत्र को गिनते हैं।

* अर्थात् मंदबुद्धि वाले नित्यवासी साधु इन सब पुष्टालंबन को नहीं देखते और मात्र एक क्षेत्र में रहने को पकड़ लेते हैं।

अव. नित्यवास द्वार गया। चैत्यभक्ति द्वार (देखें प्रतिद्वार गा. 1176 pg. 85) —

गा. 1180 चैत्य, कुल, गण, संघ या अन्य कुछ या आर्यवज्रस्वामी का आलंबन लेकर अकृत्य का सेवन करते हैं।

* शिथिलाचारी 'यहाँ कोई चैत्य का ध्यान रखने वाला नहीं है अतः चैत्य का नाश हो इसलिए मैंने असंयम स्वीकार किया है' ऐसे कुछ भी अपुष्टालंबन अथवा ~~वज्र~~ वज्र स्वामी आलंबन लेकर अकृत्य का सेवन करते हैं।

गा. 1181 क्या पुरिका में जिन्होंने पूर्व का सार जाना है ऐसे वज्रस्वामी द्वारा चैत्य पूजा नहीं की गई? अतः वह भी साधुओं को मोक्ष का अंग है।

* कथानक भा. 2 में कहा गया।

HAPPY
THOUGHTS

गा. 1182 अन्यों की अपभ्राजना, स्वतीर्थ का उद्भावन और वात्सल्य तथा पूर्व में ही चूँटे हुए पुष्पों होने वाले महिमा को गिनने वाले नहीं गिनते।

* बहु वि. अन्यों की अपभ्राजना, दिव्या पूजा से स्वतीर्थ का उद्भावन और श्रावकों का वात्सल्य इन्हें नहीं गिनते।
* तथा माली ने स्वयं के लिए पहले से ही चूँटे हुए पुष्पों से होने वाली महिमा यानि यात्रा अर्थात् वज्र स्वामी ऐसे पुष्पों को विमान में लाए, ये सब नहीं गिनते।

अब. चैत्यभक्ति द्वार पूर्ण (देखें प्रतिद्वार गा. 1176 Pg 85)। अब आर्यिका लाभ द्वार -

गा. 1183 स्वयं के लाभ से असंतुष्ट, आर्यिका लाभ में गृद्ध, भिक्षाचर्या में मग्न आर्यिकापुत्र का व्यपदेश करते हैं।

गा. 1184 पुष्पचूला साध्वी द्वारा लाए हुए भक्त-पान को वापरते आर्यिका-पुत्राचार्य उसी भव में सिद्ध अंतकृत् सिद्ध हुए।

* कथानक योग संग्रह में कहेंगे।

गा. 1185 दुर्भिक्ष में शिष्यगण गया, भिक्षाचर्या में असमर्थ, वृद्ध को आर्यिकालाभ को इच्छते समर्थ भी शठ नहीं गिनते।

अब. आर्यिका लाभ द्वार गया (देखें प्रतिद्वार गा. 1176 Pg. 85)। अब विगति द्वार -

गा. 1186 लोलुपता से युक्त, अशुद्ध आभक्त-पान को वापरकर स्वयं के पाप छुपाने वाले उदायन ऋषि का व्यपदेश करते हैं।

HAPPY THOUGHTS

☆ उदायन ऋषि – वीतभय नगर x उदायन राजा दीक्षित हुआ x जैसे-तैसे आहार से रोग हुआ x वैद्य ने कहा - दहीं के साथ वापरना x वे गोकुल में रहे x एकदा वीतभय नगर x वहाँ उनके द्वारा ही राजा बनाया गया केशी भांजा राजा था x मंत्रियों ने केशी को कहा - परीषहों से हारकर पुनः ये राज्य माँगेगे x केशी - मैं उन्हें दे दूँगा x मंत्री - ऐसे राज्य दे ~~देना~~ देना, राजधर्म नहीं है x बार-बार समझाने पर मान गया और पूछा - क्या करें? x मंत्री - विष दें x एक पशुपालिका को कहा x उसने विषमिश्रित दहीं वहोराया x देव ने विष दूर किया और उन्हें कहा - महर्षि! आपको विष दिया है अतः दहीं का त्याग करो x ऋषि ने ऐसा किया तो रोग बढ़ने लगा x पुनः दहीं लिया तो विष देव ने दूर किया x ऐसे देव उनके साथ ही रहने लगा x एकबार देव प्रमत्त होने पर विषमिश्रित दहीं वापरने से उनका कालधर्म हुआ x उनका शय्यातर कुंभकार था x उस कुंभकार को देव ने उठाकर सेनापल्ली नगर में छोड़ा जिससे नगर का नाम कुंभकारक्षेप पड़ा x शेष पूरे वीतभय नगर को धूल से ढँक दिया x आज भी वहाँ धूल के टीले दिखते हैं।

पुष्ट कारण होने से उन्हें दोष नहीं था।

गा.1187 शीतल और रूक्ष जिन्हें अनुचित था ऐसे, गोकुलों में विगई मिश्र आहार से यापन करते को समर्थ भी शठ कहते हैं कि क्या उदायन मुनि नहीं थे?

☆ राजा होने के कारण और रोग के कारण ठंडा और लुखा आहार उन्हें अनुकूल नहीं था।

HAPPY THOUGHTS

अव॰ इस प्रकार नित्यावासादि में का मंदधर्म वाले सेवन करते हैं। कुछ तो सूत्रादि का ही आश्रय लेते हैं–

गा.1188 सूत्र-अर्थ-बाल-वृद्ध- असह-द्रव्यादि आपद् को आलंबन कर संस्तार करते हुए भी प्रमाद करते हैं।

* सूत्र का आलंबन- मैं पढ़ता हूँ अतः किसे वापरूँ या मुझे विहारादि से क्या? इस प्रकार मैं अर्थ सुनता हूँ इत्यादि।

* ऐसे बालपन, वृद्धत्व, असह यानि असमर्थत्व और द्रव्यादि आपद् को आगे कर कितने ही अल्पसत्त्व वाले जीव संस्तार करते हुए यानि अच्छी तरह संयम पालन में समर्थ होते हुए भी प्रमाद का सेवन करते हैं।

* द्रव्यादि आपद्–

द्रव्य आपद्= यह द्रव्य दुर्लभ है इत्यादि।

क्षेत्रापद्= यह क्षेत्र छोटा है " ।

कालापद्= दुर्भिक्षादि।

भावापद्= मैं ग्लान हूँ इत्यादि।

गा. 1189 अयतना न करने की इच्छा वाले जीव के लिए आलंबनों से (यत्न) पूरा लोक भरा है। जो जो देखते हैं, लोक में उसे उसे आलंबन करते हैं।

अव. जीव 2 प्र.- मंद मंदश्रद्धा, तीव्रश्रद्धा। उनमें मंदश्रद्धा वालों के आलंबन अन्य हैं, तीव्रश्रद्धा वालों के आलंबन अन्य हैं–

गा. 1190 चरण-करण से भ्रष्ट बहुश्रुत जहाँ, जब, जिस काल में जो आचरते हैं, वह मंदश्रद्धावालों के लिए आलंबन है।

HAPPY
THOUGHTS

★ जिस काल में = सुषम-दुषमादि।
★ जब = दुकालादि में।
★ दृ. मथुरा में मंगु आ. ने सुभिक्ष में भी आहारादि की आसक्ति न छोड़ने से पार्श्वस्थपन का सेवन किया।

★ 'ऐसा भी जिनों द्वारा धर्म देखा गया है' ऐसा कहकर मंदश्रद्धा वाले वह आचरण करते हैं।

गा. 1191 चरण-करण से संपन्न बहुश्रुत जहाँ, जब, जिस काल में जो आचरते हैं, वह तीव्र श्रद्धा वालों का आलंबन है।
★ दुकालादि में भी जो भिक्षुप्रतिमादि आचरते हैं, वह तीव्र श्रद्धा वालों के लिए आलंबन है।

अव. आनुषंगिक कहा गया। यह सिद्ध हुआ कि पार्श्वस्थादि को वंदन नहीं करना चाहिए। (प्रतिद्वार गा. 1176 पूर्ण पृ 85) (प्रतिद्वार गा. 1108 पूर्ण पृ 49)। अब निगमन –
गा. 1192 दर्शन-ज्ञान-चारित्र, तप-विनय के हमेशा पास रहनेवाले और प्रवचन के यश का घात करने वाले ये अवंदनीय हैं।
★ हमेशा का ग्रहण इत्वर काल के प्रमाद का व्यवच्छेद करने के लिए। इत्वर काल के प्रमाद से ज्ञानादि का नाश होने पर भी व्यवहार से वह साधु ही है।

★ यश घाती कैसे? – श्रमण गुणों से जो यश प्राप्त किया है, वितथाचरण से उसका घात करने वाले।

HAPPY THOUGHTS

अव. पार्श्वस्थादि को वंदन में अपायों का निगमन –

गा.1193 सुखशील जन में वंदन या प्रशंसा कर्मबंध के लिए होता है। जो जो प्रमादस्थान है, वे वे उपबृंहित होते हैं।

* वंदन या प्रशंसा करने से वे पार्श्वस्थादि 'हम पूज्य ही हैं' ऐसे सोचकर अधिक निरपेक्ष होते हैं।

अव. साधु ही वंदनीय हैं, ऐसा निगमन –

गा.1194 दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप-विनय में हमेशा उद्युक्त और प्रवचन के यशकारी ये वंदनीय हैं।

अव. साधु को वंदन में गुणों का निगमन –

गा.1195 संविग्नजन में कृतिकर्म और प्रशंसा निर्जरा के लिए होता है। जो जो विरतिस्थान हैं, वे वे उपबृंहित होते हैं।

* संविग्न – 2 प्र. द्रव्य – पत्ते पर चलने वाले सदा त्रस्त (डरे) हुए चित्त वाले हिरण।
भाव – साधु।
यहाँ भाव संविग्न का अधिकार है।

अव. वंदनीय साधु के भेद –

गा.1196 आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर और रत्नाधिक, इन्हें निर्जरा के लिए वंदन करना चाहिए।

* आचार्य → सुत्तत्थविऊ लक्खणजुत्तो गच्छस्स मेढिभूओ य।
गणतत्तिविप्पमुक्को अत्थं भासइ आयरिओ।
सूत्र-अर्थ को जानने वाले, लक्षण से युक्त, गच्छ के आधार, गण की चिंता से मुक्त आचार्य अर्थ कहते हैं।

HAPPY THOUGHTS

प्र. आचार्य सूत्र क्यों नहीं कहते ?

उ. सूत्रवाचना देने के परिहार पूर्वक अर्थ का ही व्याख्यान करते आचार्य की एकाग्रता अर्थ चिंतन रूप ध्यान में होती है। यदि सूत्र भी वाचना करे तो बहुत व्यग्र होने से अर्थ चिंता में एकाग्रता नहीं हो। एकाग्रता से चिंतन करने पर सूत्र-अर्थ की वृद्धि होती है। तीर्थंकर अर्थ ही कहते हैं, उनकी अनुकृति होती है। सूत्र वाचना देते हुए आचार्य की लघुता होती है क्योंकि उपाध्यायादि से भी सूत्र वाचना सिद्ध हो जाती है। तीर्थंकर की आज्ञा का पालन होता है। (टिप्पणक) [*कारण पीछे पृ. 94 पर]

इन आचार्य को पर्याय से अधिक भी उपाध्यायादि द्वारा वंदन किया जाना चाहिए।

* उपाध्याय - सम्मत्तणाणसंजमजुत्तो सुत्तत्थतदुभयविहिन्नू।
आयरियठाणजुग्गो सुत्तं वाए इवज्झाओ॥

उपाध्याय की सूत्र वाचना के लाभ →

(a) सूत्रार्थ की स्थिरता - उपाध्याय शिष्यों को सूत्रवाचना देते हुए स्वयं अर्थ भी भावित करते हैं अतः उन्हें सूत्र-अर्थ में स्थिरता होती है।

(b) ऋणमुक्ति - अन्य को वाचना देने से सूत्र रूप ऋण से मुक्ति होती है।

(c) अविच्छेद - भविष्य में सूत्र परंपरा का विच्छेद नहीं होता।

(d) प्रतीच्छक - 'जो साधु सूत्र उपसंपदा ग्रहण करते हैं, वे प्रतीच्छक कहलाते हैं, वे अनुगृहीत होते हैं।

HAPPY THOUGHTS

ⓔ मोह जय - सूत्रवाचना देने में व्यग्र होने से चित्त में दुर्ध्यान नहीं होता। (टीप्पणक)

*ⓔ (Pg. 93) सामान्य अवस्था में सूत्र देने से उनका सूत्र रूप ऋण मुक्त हो गया। अतः वे कृतकृत्य होने से सूत्रवाचना नहीं देते।

ऐसे उपाध्याय को पर्याय से अधिक भी सभी साधु द्वारा वंदन करना चाहिए।

* प्रवर्तक = यथोचितं प्रशस्तयोगेषु साधून् प्रवर्तयति।
तवसंजमजोगेसु जो जोगो तत्थ तं पवत्तेइ।
असहुं च नियत्तेई गणतत्तिल्लो पवत्ती उ॥
हीन पर्याय वाले होने पर भी इन्हें सभी साधुओं द्वारा वंदन किया जाना चाहिए।

* स्थविर = सीदतः साधूनैहिकामुष्मिकापायदर्शनतो मोक्षमार्ग एव स्थिरीकरोति।
थिरकरणा पुण थेरो पवत्तिवावारिएसु अत्थेसु।
जो जत्थ सीयइ जई संतबलो तं थिरं कुणइ॥
प्रवर्तक द्वारा व्यापारित साधुओं को योगों में स्थिर करने से, जो साधु जिस योग में शक्ति होने पर भी सीदाता है, उसे स्थिर करते हैं।
न्यून पर्याय वाले होने पर भी इन्हें सभी साधुओं द्वारा वंदन किए जाने चाहिए।

HAPPY THOUGHTS

* गणावच्छेदक - ग्रंथ में ग्रहण न करने पर भी साहचर्य होने से यह भी जानना।

उद्धावन, प्रधावन, क्षेत्रप्रत्युपेक्षणा, उपधिमार्गणादि में अविषादी और सूत्र-अर्थ उभय जानने वाले गणावच्छेदक होते हैं।

उद्धावन = क्षेत्रप्रत्युपेक्षणा या उपधिगवेषणा वि. गच्छ के कार्य हेतु जब उत्पन्न हो तब तुरंत दौड़ना। (दीपिका)

प्रधावन = मुझ पर उपकार किया अतः वह कार्य करना। (दीपिका)

इन्हें पर्याय से अधिक भी सभी साधु वंदन करे।

* रत्नाधिक = पर्याय में ज्येष्ठ।

* उपर्युक्त क्रम से ही सभी को निर्जरा के लिए वंदन करना।

अन्य मत - आलोचना करते हुए सब आचार्य को वंदन करे। फिर रत्नाधिक के क्रम से वंदन करे। प्रतिक्रमण में आने वाले वंदन में आचार्य भी ज्येष्ठ को वंदन करे।

अब. 'I. वंदन किसे करना?' द्वार पूर्ण (देखें मूल द्वार गा. 1103 Pg 43)
अब. 'II. किसके द्वारा वंदन किए जाना चाहिए?' द्वार।
पहले जिनके द्वारा वंदन न किए जाना चाहिए, उन्हें कहते हैं -

गा. 1197 माता-पिता-ज्येष्ठ भाई तथा सभी रत्नाधिक को वंदन न कराए।

* अपि शब्द से प्रातामह-पितामहादि लेना।

HAPPY THOUGHTS

★ माता वि. को वंदन कराने से लोक में गर्हा होती है, माता वि. को भी कभी विपरिणाम होता है। यदि उन्हें आलोचना सुनना हो, अनशनादि प्रत्याख्यान कराना हो अथवा सूत्र-अर्थ देना हो तो अन्य श्रावक न होने पर वंदन कराए। यदि अन्य श्रावक हो तो वे न देखे इस तरह वंदन कराए।

यह दीक्षा लिए हुए माता-पिता वि. की विधि है। यदि गृहस्थ हो तो करे।

अव. जिसे वंदन करना चाहिए उन्हें कहते हैं-

गा.1198 पंच महाव्रतयुक्त, आलस रहित, मान रहित मतिवाले, संविग्न, निर्जरार्थी साधु वंदन करे।

अव. II. कौन द्वार पूर्ण (देखें मूलद्वार गा.1103 पृ 43)। III. कब द्वार-

गा.1199 व्याक्षिप्त, पराङ्मुख, प्रमत्त, आहार और नीहार करते को कभी वंदन नहीं करना।

★ धर्मकथादि से व्याक्षिप्त को वंदन करने में धर्मान्तराय यानि वक्ता-श्रोता दोनों को अंतराय करने का दोष।

★ पराङ्मुख, (च शब्द से) उत्थितादि को वंदन करने में अनवधारण यानि उनका अपनी तरफ ध्यान ही न जाने का दोष।

★ क्रोधादि प्रमाद से प्रमत्त को वंदन करने में अपने पर ही प्रकोप होने की संभावना।

★ आहार करने जाते या करते हुए को वंदन करने में आहार के अंतराय का दोष।

HAPPY THOUGHTS

* नीहार करने जाते हुए को वंदन करने में पुरीष रोकने से बीमारी होने वि. का दोष।

अव. कब वंदन करना चाहिए –

गा. 1200 प्रशांत, आसनस्थ, उपशांत, उपस्थित को अनुज्ञा लेकर मेधावी वंदन करे।

* व्याख्यानादि व्याक्षेप रहित = प्रशांत।
उपशांत = क्रोधादि प्रमाद रहित।
उपस्थित = 'तेरी इच्छानुसार वंदन कर' ऐसा कहे।

* अनुज्ञा लेने में 2 आदेश हैं – 'इच्छामि... निसीहियाए' तक वंदन अनुज्ञा और 'अणुजाणह मे...' से अवग्रह प्रवेश की अनुज्ञा मांग लेते हैं।

* जो ध्रुववंदन हैं, उनमें अनुज्ञा लेने की जरूर नहीं हैं; जो औत्पत्तिक यानि प्रसंगोपात वंदन हैं, उनमें अनुज्ञा लेना। (ध्रुववंदन और औत्पत्तिक वंदन आगे गा. 1201 वि. में कहेंगे)

अव. III. कवद्वार (देखें मूल द्वार गा. 1103 पृ. 43) | IV. कितनी बार वंदन करना? | रोज वंदन नियत और अनियत होते हैं। इन दोनों वंदन के स्थान बताते हैं –

गा. 1201 प्रतिक्रमण, सज्झाय, काउसग्ग, अपराध, प्राघूर्णक, आलोचना, संवरण और उत्तमार्थ होने पर वंदन करे।

* प्रतिक्रमण = अपराधस्थानों से गुणस्थानों में वृत्ति।

HAPPY THOUGHTS

स्वाध्याय = वाचनादि रूप।
काउस्सग्ग = विगई वापरने के लिए आचाम्ल के विसर्जन के लिए किया जाता है।
अपराध = गुरु के विनय के लंघन रूप।
पाक्षिकादि वंदन का समावेश 'अपराध' में ही होता है।
प्राघूर्णक = ज्येष्ठ आने पर।
आलोचना = विहार और अपराधों की।
संवरण = वापरने के बाद के पच्चक्खाण या नवकारसी का पच्चक्खाण हो तथा अजीर्णादि से जिसे उपवास का पच्चक्खाण लेना हो तब।
उत्तमार्थ = अनशन - संलेखना।

अव. यहाँ सामान्य से नियत-अनियत वंदन कहे। अब नियत वंदन के स्थान की संख्या-

गा. 1202 प्रतिक्रमण में 4 और स्वाध्याय में 3, ऐसे पूर्वाह्ण में 7 और अपराह्ण में 7, कुल 14 वंदन होते हैं।

* प्रतिक्रमण के 4 वंदन - ① सुबह वंदन का आलोचना करे तब (इच्छाकारेण... राईअं आलोउं? आदेश के पहले वांदणा)
② श्रमणसूत्र में अब्भुट्ठिओमि आराहणाए... वि. बोलने के बाद के वांदणा
③ फिर जघन्य से 3, मध्यम से 5-7 या उत्कृष्ट से सभी को वंदन करना (अब्भुट्ठिओ खामना)। दैवसिक प्रतिक्रमण में यदि कोई व्यस्त हो या स्वयं व्यस्त हो तो 1-1 कम कर जघन्य से 3 साधु को वंदन। चौमासी में 5, सांवत्सरिक में 7।

HAPPY THOUGHTS

③ इन्हें वंदन कर पुनः आचार्य को वांदणा ।
④ पच्चक्खाण के पहले के वंदन-वांदणा ।

★ स्वाध्याय में ३ वंदन - ① वंदन कर सज्झाय पठाए (कालग्रहण के बाद सज्झाय पढाने की विधि में 'सज्झाय संदिसाहुं' आदेश के पहले वांदणा)

② पढाने के बाद पुवंदन करने पर वंदन ('सज्झाय पवेडं' आदेश के पहले के वांदणा) फिर सूत्र के उद्देश-समुद्देश करना, उद्देश-समुद्देश के वांदणा का इसी वंदन में अन्तर्भाव होता हैं। फिर प्रथम प्रहर का चौथा भाग शेष रहे तब तक जिस सूत्र का उद्देश-समुद्देश किया हो, उसे पढ़ना। यदि आगे वह पढ़ने की इच्छा वाला हो तो सीधे पोरसी पढ़ाकर पात्रे पडिलेहन करे। यदि आगे पढ़ने की इच्छा न हो (वैयावच्चादि करना हो) तो वंदन कर पोरसी पढ़ाए और पात्रे पडिलेहन करे।
फिर पढ़ने वाला आगे पढ़े।

③ दूसरा प्रहर पढ़कर पुरिमड्ढ के २५ मि. पहले जब असज्झाय शुरू होती हैं, उस असज्झाय के कुछ देर पहले से वंदन कर उपयोग करने के लिए इरियावही करे।

ऐसे पूर्वाह्ण में ७ वंदन हुए। अपराह्ण में भी ७ वंदन ऐसे ही होते हैं। अनुज्ञा के वंदन का स्वाध्याय के वंदन में अंतर्भाव करना।
ऐसे १५ वंदन रोज उपवासी को होते हैं।
वापरने वाले को पच्चक्खाण का वंदन (दोपहर के पडिलेहन या

HAPPY THOUGHTS

जोग की शाम की क्रिया में) अधिक होते हैं।

अव. IV कतिकृत्व:' द्वार पूर्ण। द्वार गा.1103 पूर्ण (देखें Pg 43)। अब गा.1104 में V कितने अवनत द्वार-

गा.1203 (पूर्वार्ध) 2 अवनत, यथाजात, द्वादशावर्त वंदन।

मस्तक झुकाना = अवनत।

★ द्वादशावर्त वंदन में 2 अवनत होते हैं - ① इच्छामि खमा-समणो! वंदिउं... निसीहियाए' इतना बोलकर गुरु की इच्छा से अनुज्ञा लेने के लिए झुके।

② दूसरे वांदणा में पुनः अनुज्ञा लेने के लिए झुके।

★ द्वादशावर्त वंदन यथाजात है अर्थात् वह यथाजात मुद्रा में करना चाहिए। यथाजात 2 प्र.-

1. दीक्षा = रजोहरण - मुहपत्ति - चोलपट्ट, इतने ही उपकरण से वह श्रमण हुआ था।
2. जन्म (योनि से निष्क्रमण) = हाथ जोड़े हुए, पैर मुड़े हुए इत्यादि वांदणा की मुद्रा।

★ द्वादशावर्त यानि जिसमें 12 आवर्त हैं। 'अहोकायं काय-संफासं खमणिज्जो भे किलामो अप्पकिलंताणं बहुसुभेण भे दिवसो वइक्कंतो? जत्ता भे जवणिज्जं च भे' इतने सूत्र से युक्त गुरु-चरण में स्थापित हाथ को सिर पर स्थापन करने रूप।

एक बार में 6, दो में 12 आवर्त।

HAPPY THOUGHTS

अव. V कितने अवनत 'द्वार पूर्ण (देखें द्वारगा. 1104 पृ 43)। अब VI. कितने सिर द्वार—

गा.1203 4 सिर, 3 गुप्त, 2 प्रवेश, 1 निष्क्रमण।
(उत्तरार्ध)

★ सिर चार होते हैं — प्रथम प्रविष्ट होने पर शिष्य और गुरु (?) के 2 सिर, ऐसे ही दूसरे वंदणा में भी 2 सिर।

★ त्रिगुप्त — मन से प्रणिधानवाला, वचन से अस्खलित अक्षरों का उच्चार करना, काय से आवर्तों की विराधना न करना।

★ 2 प्रवेश निसीहि से, 1 निर्गम आवस्सही से।

★ ये सब द्वार अवनत और सिर द्वार से उपलक्षित जानना।

अव. VI कितने सिर 'द्वार पूर्ण (देखें द्वारगा. 1104 पृ 43)। अब VII कितने आवश्यकों से वंदन शुद्ध —

गा.1204 2 अवनत, यथाजात, 12 आवर्त, 4 शीर्ष, 3 गुप्ति, 2 प्रवेश
गा.1205 1 निष्क्रमण ; ये 25 आवश्यक कहे गए जिन आवश्यकों से किया जाता वंदन परिशुद्ध होता है।

अव. इन 25 आवश्यकों से शुद्ध वंदन करना चाहिए अन्यथा वंदन द्रव्य होता है—

गा. 1206 किइकम्मंपि करिंतो न होइ किइकम्मनिज्जराभागी।
पणवीसामन्नयरं साहू ठाणं विराहंतो॥

HAPPY THOUGHTS

★ जैसे एक भी अनुष्ठान से रहित विद्या फल देने वाली नहीं होती, वैसे 1 भी आवश्यक से विकल

वंदन शुद्ध नहीं ~~हैं~~ होता।

अब अविराधक को लाभ बताते हैं-

गा.1207 पणवीसा परिसुद्धं किइकम्मं जो पउंजइ गुरूणं।
सो पावइ निव्वाणं अचिरेण विमाणवासं वा॥

अब VII आवश्यक से शुद्ध' द्वार पूर्ण। VIII. कितने दोष से रहित-
इसमें 32 दोष से रहित वंदन करना। वे 32 दोष-

गा.1208 1. अनादृत 2. स्तब्ध 3. प्रविद्ध 4. परिपिंडित 5. टोलगति 6. अंकुश 7. कच्छपरिंगित।

★ 1. अनादृत= संभ्रम रहित वंदन करे। संभ्रम = आदर।
2. स्तब्ध= जात्यादि मद से स्तब्ध होकर वंदन करे।
3. प्रविद्ध= वंदन करता हुआ ही भाग जाए।
4. परिपिंडित= एक वंदन से बहुत सारों को वंदन करे या सूत्र बोलते हुए व्यंजन के अभिलाप वाले आवर्त अलग होना चाहिए, उन्हें एक साथ बोले।
5. टोलगति= तीड़ की तरह कूदते हुए वंदन करे।
6. अंकुश= ओघे को अंकुश की तरह दो हाथ से पकड़े।
7. कच्छपरिंगित= कछुए की तरह रेंगते हुए वंदन करे।

टीप्पणक → 32 दोष की प्रतिपादिका गाथा कोई भी अभिप्राय से वृत्तिकार द्वारा कहकर व्याख्या नहीं की गई। अतः यहाँ उन गाथाओं के विषमपद की व्याख्या करते हैं।
(ये गाथाएँ प्रवचनसारोद्धार में देखना)

HAPPY THOUGHTS

1. आदर = संभ्रम, सादर रहित वंदन करना है, अनादृत।
2. स्तब्धत्व 2 प्र. द्रव्य से, भाव से। यहाँ चतुर्भंगी-

अस्तब्ध	द्रव्य	भाव
	✓	✓
	✓	×
	×	✓
	×	×

~~प्रथम~~ चरम भांगा शुद्ध। भाव से स्तब्ध होना (प्रथम और तृतीय भांगा) अशुद्ध ही है। द्रव्य से स्तब्ध यदि कारणिक हो तो शुद्ध, निष्कारणिक अशुद्ध।

3. प्रविद्ध यानि उपचार रहित। जो गुरु को वंदन करता हुआ अनियंत्रित हो और प्रथमप्रवेशादि में ही असमाप्त वंदन छोड़कर भाग जाए। जैसे- कोई भारक अन्य नगर में भांड (किराना वि.) ले जाए, भांड के स्वामी ने कहा- कुछ काल इंतजार कर जब तक मैं सामान उतारने जगह ढूंढू, भारक- मुझे तो इस नगर में ही जाना था अतः मेरा काम पूरा हुआ, ऐसा कहकर अस्थान में ही सामान छोड़कर भाग जाए।
4. 2 अर्घ कहे। अथवा जांघ पर हाथ न रखकर अव्यक्त सूत्रोच्चार पूर्वक हाथ- पैर पिंडित कर वंदन करे।
5. तीड़ की तरह वंदन करते हुए आगे या पीछे खसकना।
6. जैसे अंकुश से हाथी को रोकते हैं, वैसे खड़े हुए- सोये हुए- या अन्य प्रयोजन में व्यग्र आचार्य को चोलपट्ट- कपड़ा वि. उपकरण या हाथ पकड़कर अवज्ञा से खींचकर आसन पर बैठा दें। फिर वंदन करे तो यह अंकुश वंदन। पूज्य कभी भी उपकरणादि से खींचने के योग्य नहीं है, अविनय होने से। प्रणाम कर, हाथ जोड़कर

HAPPY THOUGHTS

विनय पूर्वक कहना - आप आसन पर विराजो तो मैं वंदन करूँ।
यहाँ वृत्तिकार ने अन्यथा व्याख्यान किया है, तत्त्व तो विशिष्टश्रुतज्ञानी जाने।

7. तित्तीसन्नयराए वि. बोलते हुए खड़े-खड़े या अहोकायं वि. बोलते हुए बैठे-बैठे कछुए की तरह आगे कुछ खसके, वह कच्छप-रिंगित।

हरिभद्रीय
वृत्ति गा. 1209

8. मत्स्योद्वृत्त 9. मन से दुष्ट 10. वेदिकाबद्ध 11. भय से 12. भजन से 13. मैत्री 14. गारव 15. कारण।

*8. मत्स्योद्वृत्त = एक साधु को वंदन कर दूसरों को वंदन करने दूसरी ओर जल्दी से मछली की तरह करवट बदले।

9. मन से दुष्ट = ये ~~मुस्से~~ किसी गुण में हीन हैं वंद्य होने पर उसी गुण को मन में सोचकर असूया सहित वंदन करे।

10. वेदिकाबद्ध = घुटने के ऊपर हाथ रखे (वांदणा में बैठने पर), हाथ पैर के बीच से निकालकर घुटने के नीचे रखे या घुटने हाथ के बीच में रखे या एक घुटने दोनों हाथ के बीच में रखे।

11. भय = भय से वंदन करे कि वंदन नहीं करूँगा तो गच्छ से निकाल देंगे वि.।

12. भजते हुए को वंदन करे = ये आचार्य मेरी सेवा करते हैं (ग्लानादि में) अतः मैं भी इनकी सेवा करूँ।

13. मैत्री = मित्रता की इच्छा से वंदन करे।

14. गारव = 'मैं सामाचारीकुशल हूँ' ऐसा ये जाने।

HAPPY THOUGHTS

15. कारण = ज्ञानादि सिवाय के कारण से 'मुझे वस्त्रादि देंगे' वंदन करे।

टीप्पणक

8. उठते हुए या बैठे हुए मच्छ मछली की तरह करवट बदले। ऐसे जल्दी से अंग परावर्तन करने को रेचकावर्त कहा जाता है।

9. मन से द्वेष अनेक निमित्तों से होता है, वह सब द्वेष आत्मप्रत्यय या परप्रत्यय से होता है। आत्मप्रत्यय में eg. गुरु शिष्य को कुछ कठोर बोले। परप्रत्यय में eg. शिष्य के संबंधी मित्रादि के सामने गुरु कुछ अप्रिय कहे। इत्यादि हो है।

10. Same

11. ये मेरी सेवा में करते हैं या करेंगे, इस हेतु से वंदन करे। है।

12.13.14. Same

15. ज्ञानादि 3 को छोड़कर इहलोक के साधक किसी कारण से वंदन करे।

9. ज्ञानादि ग्रहण के लिए जब वंदन करता है तब क्या एकांत से कारण दोष नहीं होता?

3. 'मैं वंदन कर श्रुत ग्रहण करूँ। जिससे लोक में पूज्य और अन्य श्रुतधरों से अधिक होऊँगा' यदि ऐसे पूजा या गारव के लिए वंदन करे तब कारण दोष होगा।

इहलोकसाधक कारण का eg. वंदन के बाद मैं इनसे वस्त्रादि माँगू जिससे ये मेरी प्रार्थना का भंग नहीं करेंगे।

हरिभद्रीय वृत्ति गा. 1210

16. स्तैन्य 17. प्रत्यनीक 18. रुष्ट 19. तर्जित
20. शठ 21. हीलित 22. विपलिकुंचित

HAPPY THOUGHTS

16. स्तैन्य = चोर की तरह खुद को छुपाते हुए वंदन करे कि 'मेरी लघुता न हो'।

17. प्रत्यनीक = आहारादि काल में वंदन करे।

18. रुष्ट = क्रोध से युक्त गुरु को वंदन करे या स्वयं क्रोधित होकर वंदन करे।

19. तर्जित = लकड़ी से बनी हुई मूर्ति की तरह कोप भी नहीं करते, प्रसन्न भी नहीं होते इत्यादि भर्त्सना करता हुआ वंदन करे। अथवा अंगुली वि. से भर्त्सना करता हुआ वंदन करे।

20. शठ = शठता से विश्वास के लिए वंदन करे या रोगादि का बहाना कर सम्यक् वंदन न करे।

21. हीलित = हे गणी! वाचक! आपको वंदन करने से क्या फायदा? इत्यादि हीलना कर वंदन करे।

22. विपलिकुंचित = वंदन के बीच में ही देशादि कथा करे।

दीपक → 16. 'यह अतिविद्वान् भी दूसरे को क्यों वंदन करता है?' इत्यादि मेरी अपभ्राजना न हो इसलिए साधु-श्रावकादि की दृष्टि से छुपकर वंदन करे।

17. 18. स्पष्ट।

19. वंदन न करने पर कोप नहीं करते और वंदन करने पर प्रसन्न नहीं होते, ऐसे हीलना करे अथवा मेलापक में सिर से या तर्जनी अंगुली से तर्जना करते हुए वंदन करे।

हरिभद्रीय वृत्ति गा. 121

23. दृष्टादृष्ट 24. शृंग 25. करमोचन 26. मोचन 27. आश्लिष्ट-अनाश्लिष्ट 28. ऊन 29. उत्तरचूड।

HAPPY THOUGHTS

अव. 32 में से एक दोष भी त्यागने से फल प्राप्ति नहीं होती-

गा.1213 किइकम्मंपि करिंतो न होइ किइकम्मनिज्जराभागी।
बत्तीसामन्नयरं सादु ठाणं विराहिंतो॥

गा.1214 बत्तीसदोसपरिसुद्धं किइकम्मं जो पउंजइ गुरूणं।
सो पावइ निव्वाणं अचिरेण विमाणवासं वा॥

अव. प्र. दोष से शुद्ध वंदन से कौन सा गुण होता है, जिससे निर्वाण प्राप्त होता है? उ.-

गा.1215 आवस्सएसु जह जह कुणइ पयत्तं अहीणमइरित्तं।
तिविहकरणोवउत्तो तह तह से निज्जरा होइ॥

* त्रिविध करण (मन-वचन-काया) से उपयुक्त जैसे जैसे हीन भी नहीं और अधिक भी नहीं ऐसा प्रयत्न आवश्यकों में करता है, उसे निर्जरा होती है। निर्जरा से ही निर्वाण होता है।

अव. ~~VIII~~ कितने दोष रहित' द्वार पूर्ण (देखें द्वार गा. 1104 Pg 43)।
IX. किसलिए वंदन करना - द्वार में वंदन के कारण कहते हैं-

गा.1216 विनयोपचार, मानभंग, गुरुपूजा, तीर्थंकर आज्ञा, श्रुतधर्माराधना, अक्रिया।

* अक्रिया = परंपरा से ~~अक~~ अक्रिय यानि सिद्ध होंगे।

* 'विनयफलं शुश्रूषा गुरुशुश्रूषाफलं श्रुतज्ञानं।
ज्ञानस्य फलं विरतिर्विरतिफलं चाश्रवनिरोधः
संवरफलं तपोबलमथ तपसो निर्जरा फलं दृष्टं।
तस्मात्क्रियानिवृत्तिः क्रियानिवृत्तेरयोगित्वम्॥

HAPPY THOUGHTS

योगनिरोधाद्भवसन्ततिक्षयः सन्ततिक्षयान्मोक्षः।
तस्मात्कल्याणानां सर्वेषां भाजनं विनयः॥
(प्रशमरति 72-74)

गा. 1217 शासन में विनय मूल है। विनीत संयत होता है। विनय रहित को कौन सा धर्म और कौन सा तप?

अव. विनय शब्द का अर्थ-

गा. 1218 संसार से छूटने के लिए 8 प्र. के कर्म दूर करने वाला विलीनसंसार वाले ज्ञानी विनय कहते हैं।

अव. '18. वंदन क्यों करना' द्वार पूर्ण। द्वार गा. 1104 (Pg 43) पूर्ण।
अब अध्ययन शब्द का अर्थ कहना चाहिए।
वंदन शब्द का अर्थ कहा गया (देखें Pg 42 पर ✱) अतः अध्ययन शब्द का अर्थ कहने का अवसर है। (टीप्पणक)
अध्ययन शब्द का अर्थ पहले विस्तार से कह चुके हैं।
अतः नाम निष्पन्ननिक्षेप पूर्ण।
अब सूत्रालापक निष्पन्न निक्षेप का अवसर है (देखें Pg 13 पर अव.)। वह सूत्र होने पर होता है। सूत्र सूत्रानुगम में कहते हैं। इत्यादि समप्रश्ना। अब सीधे सूत्र—

(सूत्र) इच्छामि खमासमणो! वंदिउं जावणिज्जाए निसीहियाए अणुजाणह मे मिउग्गहं निसीहि, अहोकायं कायसंफासं, खमणिज्जो भे किलामो, अप्पकिलंताणं बहुसुभेण भे दिवसो वइक्कंतो?, जत्ता भे? जवणिज्जं च भे? खामेमि खमासमणो! देवसियं वइक्कमं, आवस्सियाए

HAPPY THOUGHTS

पडिक्कमामि खमासमणाणं दैवसियाए आसायणाए तित्तीसन्नयराए जंकिंचिमिच्छाए मणदुक्कडाए वयदुक्कडाए कायदुक्कडाए कोहाए माणाए मायाए लोभाए सव्वकालियाए सव्वमिच्छोवयाराए सव्वधम्माइक्कमणाए आसायणाए जो मे अइयारो कओ तस्स खमासमणो! पडिक्कमामि निन्दामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि॥

* इसकी व्याख्या- संहिता च पदं चैव पदार्थः पदविग्रहः।
चालना प्रत्यवस्थानं व्याख्या तन्त्रस्य षड्विधा॥

संहिता= सूत्रोच्चार।

पद- इच्छामि क्षमाश्रमण! वन्दितुं यापनीयया नैषेधिक्या अनुजानीत मम मितावग्रहं नैषेधिकी अधःकायं कायसंस्पर्शं क्षमणीयो भवता श्रमः अत्यक्त्यान्तानां बहुशुभेन भवतां दिवसो व्यतिक्रान्तः?, यात्रा भवतां? यापनीयं च भवतां?, क्षमयामि क्षमाश्रमण! दैवसिकं व्यतिक्रमं आवश्यिक्या प्रतिक्रमामि क्षमाश्रमणानां दैवसिक्या आशातनया त्रयस्त्रिंशदन्यतरया यत्किञ्चिन्मिथ्यया मनोदुष्कृतया वाग्दुष्कृतया कायदुष्कृतया क्रोधया मानया मायया लोभया सर्वकालिक्या सर्वमिथ्योपचारया सर्वधर्मातिक्रमणया आशातनया यो मयाऽतिचारः कृतस्तस्य क्षमाश्रमण! प्रतिक्रमामि निन्दामि गर्हामि आत्मानं व्युत्सृजामि।

HAPPY THOUGHTS

पदार्थ और पदविग्रह –

इच्छामि= इष् धातु उत्तम पुरुष-एकवचन।

क्षमाश्रमण= क्षमाप्रधानः श्रमणः

क्षम् धातु सहन अर्थ में, आङ् प्रत्यय; श्रम् धातु तप और खेद अर्थ में – श्राम्यत्यसौ श्रमणः।

वन्दितुं = वन्द् धातु तुम् प्रत्यय।

यापनीयया= या प्रापणे, ण्यन्त को कर्ता अर्थ में अनीय।

नैषेधिकया = नि+सिध् घञ् 'षिधु गत्याम्'। निषेधेन निर्वृत्ता नैषेधिकी तृ.एकव.।

इस प्रकार शेष पदों में भी प्रकृति-प्रत्यय की व्युत्पत्ति कहना। शिष्य के असंमोह के लिए हम नहीं कह रहे हैं।

<u>सूत्र का अर्थ</u> –

अवग्रह से बाहर रहा, अर्द्धविनत काया वाला और वंदन के लिए दो हाथ में रजोहरण लेकर उद्यत शिष्य गुरु को कहता है – हे क्षमाश्रमण (खमासमणो) यथाशक्ति (जावणिज्जाए) प्राणातिपातादि से निवृत्त शरीर से (निसीहियाए) आपको (अध्याहार) वंदन करने के लिए (वंदिउं) मैं इच्छता हूँ (इच्छामि)।

यदि गुरु व्यस्त होते हैं तो 'त्रिविधेन' कहते हैं अर्थात् मन-वचन-काया से संक्षेपवंदन कर लो शिष्य संक्षेपवंदन करता है।

यदि गुरु व्यस्त नहीं होते हैं तो 'छन्दसा' कहते हैं अर्थात् इच्छा पूर्वक वंदन कर तो शिष्य आगे का सूत्र कहता है।

HAPPY THOUGHTS

मुझे (मे) मितावग्रह (मिउग्गहं) की अनुज्ञा दो (अणुजाणह)।
गुरु के चारों ओर आत्मप्रमाण क्षेत्र अवग्रह कहलाता है।
उसमें अनुज्ञा बिना प्रवेश कल्पता नहीं है।
गुरु कहते हैं मैं अनुज्ञा देता हूँ ~~(अ~~।
शिष्य अशुभव्यापारों का त्याग कर (निसीहि) अवग्रह में प्रवेश
कर गुरु के चरण के पास रजोहरण रखकर रजोहरण और
ललाट को हाथ से स्पर्श करता हुआ यह बोलता है - मैं
आपके चरण रूप अधःकाय (अहोकायं) का मेरीकाया से
स्पर्श करता हूँ (कायसंफासं), अतः आप इस स्पर्श की अनुज्ञा
दो। तथा इस स्पर्श से होने वाली देहग्लानि रूप पीड़ा (किलामो)
आपके द्वारा (भे) क्षमा करने योग्य है या सहन करने योग्य
है (खमणिज्जो)।
तथा अल्प पीड़ा वाले ऐसे (अप्पकिलंताणं) आपका (भे)
दिन (दिवसो) बहुत सुखपूर्वक (बहुसुभेण) निकला होगा (वइक्कंतो)
यहाँ गुरु कहते हैं - तहत्ति=तथेति, अर्थात् तू जैसे सुखपूर्वक
कह रहा है, वैसा ही है।
शिष्य कहता है - तपनियमादि रूप या क्षायिक मिश्र औपशमिक
भाव रूप आपकी (भे) यात्रा (जत्ता) चल रही है?
गुरु - 'युष्माकमपि वर्तते' मेरी तो चल रही है, आपकी भी
चल रही है।
शिष्य - आपका (भे) इंद्रिय-नोइंद्रिय रूप यापनीय=शरीर
(जवणिज्जं) चल रहा है?
गुरु - 'एवमामं', हाँ ऐसा ही है।
शिष्य - मैं दिवस संबंधी (देवसियं) अपराध
(वइक्कमं) को हे क्षमाश्रमण (खमासमणो) खमाता हूँ अर्थात्

HAPPY
THOUGHTS

क्षमा माँगता हूँ (खामेमि)। यहाँ दैवसिक रात्रिकादि का उपलक्षण है।

गुरु - अहमपि क्षमयामि दैवसिकं व्यतिक्रमं प्रमादोद्‌भवं.
मैं प्रमाद से हुए दिवस संबंधी अपराध को खमाता हूँ।

फिर शिष्य प्रणाम कर और खमाकर आलोचना के योग्य और प्रतिक्रमण के योग्य प्रायश्चित्त से आत्मा को शुद्ध करता हुआ, पुनः अतिचार न करने के संकल्प पूर्वक यहाँ खड़ा होकर अवग्रह से निकलते हुए, जैसा अर्थ व्यवस्थित है, वैसा अर्थ दिखाते हुए आवस्सियाए वि. दंडक सूत्र कहता है।

टीप्पणक → 'खमासमणाणं देवसियाए आसायणाए' से लेकर 'जो मे अइआरो कओ' तक आलोचना के योग्य प्रायश्चित्त से शुद्धि होती है। अर्थात् इतने सूत्र से वह स्वयं के अतिचार की गुरु को आलोचन करता है/निवेदन करता है।
'तस्स खमासमणो!... वोसिरामि' तक प्रतिक्रमण के योग्य प्रायश्चित्त से शुद्धि होती है अर्थात् इतने सूत्र से वह प्रतिक्रमण कर पुनः अतिचार न करने के संकल्प पूर्वक खड़ा रहता है।

→ 'जैसा अर्थ व्यवस्थित है, वैसा दिखाते हुए' →
स्वयं के अतिचार की आलोचना कर मुझे अतिचारों से पीछे हटना चाहिए, प्रतिक्रमण करना चाहिए, ऐसा जो अर्थ शिष्य के मन में है, इस अर्थ को क्रिया से बताने के लिए 'आवस्सियाए...' वि.

HAPPY THOUGHTS

बोलता हुआ अवग्रह से बाहर निकलता है।

हरिभद्रीय

वृत्ति चरण-करण रूप अवश्य कर्तव्यों से बनी हुई आवश्यिकी सामाचारी। उस सामाचारी पूर्वक (आवस्सियाए) में मेरे अशोभन अनुष्ठान से पीछे हटता हूँ (पडिक्कमामि)।

यह सामान्य से कहा। इसी को विशेष से कहते हैं-

क्षमाश्रमणों की (खमासमणाणं) 33 आसातना में से एक भी (देवसियाए आसायणाए तित्तीसन्नयराए) आशातना से।

33 आशातना दशाश्रुतस्कंध में से जानना अथवा आगे प्रतिक्रमण अध्ययन में कहेंगे। 33 आशातनाएँ इन मूल 4 आशातनाओं में समा जाती हैं-

1. द्रव्याशातना = रत्नाधिक के साथ वापरते हुए मनोज्ञ अशन-पान स्वयं वापरे, उपधि वि. में भी ऐसा समझना।
2. क्षेत्राशातना = रत्नाधिक के एकदम पास में चलना।
3. कालाशातना = रात्रि या विकाल में बुलाने पर भी मौन रहना वि.।
4. भावाशातना = गुरु को तुकार से बोलना वि.।

कोई आशातना गलती से हुई हो (जंकिंचिमिच्छाए), कोई मन के द्वेष से हुई हो (मणदुक्कडाए), कोई खराब वचन से (वयदुक्कडाए) कोई एकदम पास में चलने वि. कायव्यापार से (कायदुक्कडाए) क्रोध से युक्त (कोहाए), मान से (माणाए), माया से (मायाए), लोभ से युक्त (लोभाए)

HAPPY THOUGHTS

*देखो टिप्पणक Pg. 116

अर्थात् क्रोधादि से विनयभ्रंशादि किया हो। यहाँ क्रोधादि में अर्शादि आकृतिगण से अच् प्रत्यय मतु अर्थ में जानना।

ये दैवसिक आशातना कही। अब पूर्व आदि भूत-भविष्य सभी काल के लिए कहते हैं- सभी काल में की हुई (सव्वकालियाए), मिथ्या उपचार यानि माया से जिसमें क्रिया की हो (सव्वमिच्छोवयाराए), 8 प्रवचन माता रूप धर्म का जिसमें उल्लंघन हो (सव्वधम्माइक्कमणाए)

*1

इस प्रकार की आशातना से (आसायणाए) मेरे द्वारा (मे) जो अतिचार किया गया (जो अइयारो कओ), हे क्षमाश्रमण! (खमासमणो) उस अतिचार का (तस्स) मैं आपकी साक्षी में प्रतिक्रमण करता हूँ अर्थात् पीछे हटता हूँ (पडिक्कमामि), दुष्कृत करने वाली स्वयं की आत्मा की प्रशांत और वैराग्य वाले चित्त से निंदा करता हूँ (निंदामि), गर्हा करता हूँ (गरिहामि), अनुमोदना के त्याग पूर्वक उस दुष्कृतकारी स्वयं की आत्मा को वोसिराता हूँ (अप्पाणं वोसिरामि)।

सामायिक अध्ययन में 'करेमि भंते!' अनुसार निंदादि पदों का अर्थ विस्तार से कहना।

इस प्रकार खमाकर पुनः आधी काया झुकाकर 'इच्छामि खमासमणो' वि. पूरा सूत्र बोले। विशेष- दूसरी बार में 'खामेमि खमासमणो' वि. सूत्र ~~आवस्सहि~~ आवासियाए बिना अर्थात् अवग्रह से

HAPPY THOUGHTS

बाहर निकले बिना गुरु के चरण में रहा हुआ ही बोले।

शिष्य के असम्मोह के लिए सूत्रस्पर्शिक निर्युक्ति को अवसर होने पर भी न कहकर संक्षेप में सूत्र का अर्थ कहा। ~~इस प्रकार पदार्थ और पदविग्रह पूर्ण हुआ।~~

टीप्पणक → * प्र. यहाँ सभी काल की आशातना ली किंतु भविष्य में आशातना कैसे संभव है?

उ. 'कल इन आचार्य का यह अनिष्ट मैं करूँगा' ऐसे विचार से आशातना संभव है। इस प्रकार भविष्य काल में इहभव की आशातना कही। निदानादि करने से भवांतर में भी आशातना घटती है।

हरिभद्रीय वृत्ति अब अब सूत्रस्पर्शिक निर्युक्ति –

गा.1219 इच्छा य अणुन्नवणा अव्वाबाहं च जत्त जवणा य।
अवराहखामणावि य छट्ठाणा हुंति वंदनए॥

* वंदन में 6 स्थान होते हैं– इच्छा, अनुज्ञापना (अनुज्ञा लेना), अव्याबाध, यात्रा, यापना, अपराधक्षामणा।

1. इच्छा – इच्छामि ... निसीहियाए तक।
2. अनुज्ञापना – अणुजाणह मे मिउग्गहं निसीहि
3. ~~वइक्कंतो~~ + अव्याबाध – अहोकायं ... वइक्कंतो ? तक
4. यात्रा – जत्ता भे ?
5. यापना – जवणिज्जं च भे ?
6. क्षामणा – खामेमि ... वि. पूरा सूत्र।

HAPPY THOUGHTS

अव. इच्छा –

गा. 120 नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव, ये इच्छा के 6 निक्षेप

★ द्रव्येच्छा = सचित्तादिद्रव्य की इच्छा या अनुपयुक्त सूत्र बोलते हुए को।

★ कालेच्छा = रात वि. काल की इच्छा।

रयणिमहिसारिया उ चोरा परदारिया य इच्छंति।
तालायरा सुभिक्खं बहुधण्णा केइ दुब्भिक्खं॥

अभिसारिका (संकेत से मिलने वाली) स्त्री, चोर और पारदारिक रात्रि इच्छते हैं। तालाचरा (ताला तोड़कर चोरने वाले) सुभिक्ष इच्छते हैं (जिससे भंडार भरे होने से चोरी हो)। बहुत धान्य वाले दुर्भिक्ष इच्छते हैं (जिससे उनके धान्य की किंमत बढ़े)।

★ क्षेत्रेच्छा = मागधादि क्षेत्र की इच्छा।

★ भावेच्छा = २प्र. प्रशस्त – ज्ञानादि की इच्छा।
अप्रशस्त – क्रोधादि की इच्छा।

यहाँ शिष्य की भावेच्छा का अधिकार है।

★ क्षमादि पद, जिन्हें गाथा में नहीं लिया, उनका भी निक्षेपादि कहा। प्रसिद्ध और ग्रंथविस्तार भय से नहीं कहे।

अव. अनुज्ञा –

गा. 121 नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव, ये अनुज्ञा के 6 निक्षेप।

★ द्रव्यानुज्ञा – लौकिकी – सचित्त e.g. अश्व की अनुज्ञा।
अचित्त e.g. वैडूर्यादि " ।
मिश्र e.g. विभूषित युवति " ।

लोकोत्तर – सचित्त e.g. केवल शिष्य की अनुज्ञा
मिश्र e.g. उपधि सहित शिष्य " ।
अचित्त e.g. वस्त्रादि की " ।

HAPPY THOUGHTS

कुप्रावचनिकी ऐसे ही 3 भेद।

★ क्षेत्रानुज्ञा - जिसे जितने क्षेत्र की अनुज्ञा दी जाए। या
जितने क्षेत्र में अनुज्ञा का वर्णन किया जाए।

★ कालानुज्ञा - क्षेत्र की तरह।

★ भावानुज्ञा - ~~अ~~ आचारांगादि की अनुज्ञा।

यहाँ भावानुज्ञा से अधिकार है।

इतिश्रीआवश्यकसूत्रस्य चतुर्थो भागो निर्युक्तिक्रमाङ्कैकविंशा-
त्यधिकानि द्वादश शतानि ~~[illegible]~~ यावल्लिखितः।
आवश्यकचूर्णेः सामायिकाध्ययनं यावत्पूर्वभागोऽस्ति।
चतुर्विंशतिस्तवाख्यद्वितीयाध्ययने कुन्थुं यावन्मलयगिरीय-
विवरणं मुख्याधारोऽस्ति। ततः परं मलयगिरीयविवरणमप्राप्यम्।
अतः परं हरिभद्रीयवृत्तिः मुख्याधारो कृता।
मलधारिहेमचन्द्रसूरिकृतटीप्पणके सार्थान्तरा सविशेषा च
हरिभद्रीयवृत्तिर्लिखिता।

समाप्तिवासरः- कार्तिककृष्णचतुर्दशी (गु.), 2074 वि.स.
स्थानम् - रांदेररोडजैनसङ्घः, अडाजणपाटीया, सुरत
(सूर्यपुरी)

HAPPY
THOUGHTS

Dates to Remember

DATE	OCCASION
	હારકો જીતમેં બદલને કી કલા શીખો,
	રુદન કો ગીત મેં બદલને કી કલા શીખો,
	અગર જિંદગી કી અસલીયત પાની હૈ તો,
	વૈર કો પ્રીત મે બદલને કી કલા શીખો...